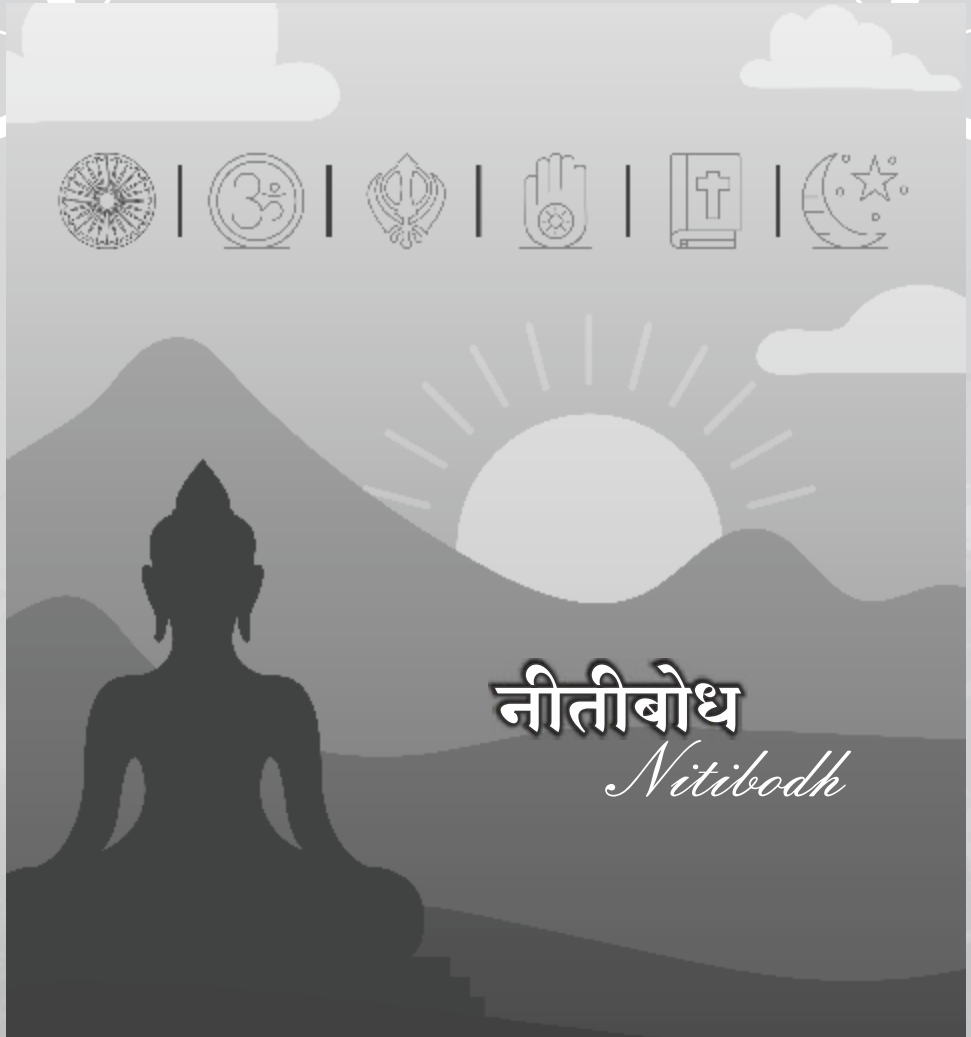

नीतीबोध

Nitibodh

P. P. DR. BABASAHEB AMBEDKAR SMARAK SAMITI'S

Dr. AMBEDKAR COLLEGE

NAAC Reaccredited with 'A' Grade (CGPA 3.45) &
Recognised by UGC as College with Potential for Excellence

Deekshabhoomi, Nagpur-440010 (M.S.) India

Published by :
The Principal
Dr. Ambedkar College
Deekshabhoomi, Nagpur.

Volume No. 1

Second Edition : 2021

Compilation Committee
Dr. Mohan Wankhade - Coordinator
Ms. Priti Singh - Member
Ms. Rohini Meshram - Member

The content of this book has been taken from different sources available in print and e-formats and reproduced only for general educational purpose. The Institution does not claim any copyrights.

PRINCIPAL'S DESK.....

A student's life is full of challenges. When most of the people talk about an educational curriculum, they think about maths, science, social studies, and languages. Seldom do we hear or read about moral values as being part of the curriculum. Moral values, as such, are important today for a student and its need arises in the formative period of their lives. Moral values prepare a student for Future Roles in Society which is so full of violence, dishonesty, bad influences and materialism. Firstly, we need to understand what we mean by Moral Values. In simple terms 'values' is the most important quality in a human being .What is moral? It may be defined as the standard of behavior determined through the principles of right or wrong with regards to proper conduct. A person who knows the difference between right and wrong – is moral.

A student should have a sense of team work, so that he grows up understanding the importance of cooperation, love and respect for all people, working together through thick and thin with the motto 'united we stand and divided we fall'. He / She should also understand the importance and value of hard work since education and hard work culminate in success. When absolutely necessary, a student should further learn to compromise and adjust and this attitude will take him long and far in his life and build good relations with people. Similarly, Compassion is the sensitiveness to the needs of other people i.e. extending a helping hand to the needy, maybe a stranger, showing sympathy, empathy and compassion towards others. A

sense of Justice along with religious tolerance with respect for his and for others' religion and understanding that all are equal regardless of caste, creed and religion is an integral value in the life of every individual today and more so of a student's life.

Thus, it is most important that moral values, being the founding blocks of society, should be instilled among students right in their student hood. They help to build a student's personality and character shaping his/her life and teach him/her to respect both self and others. Moral values would help in becoming good parents and law-abiding citizens countering the bad influences in society. To conclude, when functioning effectively, moral values are life protecting and life-enhancing for one and all whether a student or an adult.

This Hand Book published by Dr. Ambedkar College is one small step towards imparting Moral Values to our students and has been compiled by our faculty members taking into consideration the need of character building of the students at all levels.

Remember the 'CHINESE PROVERB'

'If there is righteousness in the heart, there will be beauty in character, if there is beauty in character, there will be harmony in the home, when there is harmony in the home, there will be order in the nation, when there is order in the nation there will be peace in the world'.

Contents

The Pledge / राष्ट्रीय गीत 1
भारत का संविधान - उद्देशिका 2
भारतीय राष्ट्रध्वज का सफर 3
मौलिक अधिकार (Fundamental Rights) 4
हम मानवाधिकार दिन क्यों मनाते हैं ? 8
महाराष्ट्र गीत 10

PRAYERS

सर्व धर्म प्रार्थना / पनाह 11
अनुसरणं 12
Prayer (sanskrit) 14
Morning Prayer 15
Our Father in Heaven 16
Ek Onkar (Guru Nanak Dev's Mool Mantra) 17

Moral Stories - (MARATHI)

वसलसुत्त 19
आई-वडीलांची सेवा करणे उत्तम मंगल आहे 24
मुर्खांची संगती करू नये, तर बुद्धिमानांची संगती करावी हेच उत्तम मंगल आहे 28
सीलविमंसनजातक 31
गिज्झजातक 32
साधुसीलजातक 34
पराभवसुत्त 35
धम्मदेसना 36
शिविराज चरिया 37
मन: शांती - संत एकनाथांची एक बोध कथा 39
अंधारात कसा चढणार डोंगर ? 41
विजयी बेडूक 43

Moral Stories - (HINDI)

लोभ और तृष्णा 45
क्लेश और द्वेष 46
क्रोध और शत्रुता 47
फूटा घड़ा 48

Moral Stories - (ENGLISH)

A King's Painting 49
Sometimes Just Let It Be 51
The Way God Helps 53
Does God Care ? 55
The Evil You Do, Remains With You! The Good You Do, Comes Back To You 58
Thinking Out of the Box 61
Control your Temper 63
Puppies for Sale 65
Having A Best Friend 67
The Parable of the Good Samaritan 68
The Wolf & The Crane 70
The Oak & The Reeds 71
The Mother & The Wolf 72
The Bundle of Sticks 73
The Travelers & The Sea 74

सुभासितानि

निवडक धम्मपद 75
महामंगल सुत्त 78
करणीय मेत्तसुत्त 80
धम्मपालनाचा उपदेश 81
तथागतने कहा था 82
मित्र के रूप में शत्रु 84
सम्यक वाणी 86
छह दिशा नमस्कार के अर्थ 88
उर्दु शेर 93
Pearls of Wisdom 96

THE PLEDGE

India is my country

All Indians are my brothers and sisters.

I love my country and I am proud of its rich and varied heritage.

I shall always strive to be worthy of it.

I shall give respect to my parents, teachers and elders and treat everyone with courtesy.

To my country and my people, I pledge my devotion.

In their well being and prosperity alone, lies my happiness.

राष्ट्रीय गीत

जन-गण-मन अधिनायक जय हे
भारत भाग्य विधाता

पंजाब सिन्ध, गुजरात, मराठा
द्राविड उत्कल बंग

विन्ध्य हिमाचल, यमुना, गंगा
उच्छल जलधि तरंग

तव शुभ नामे जागे
तव शुभ आशिष मागे
गाहे तव जय गाथा

जन-गण-मंगल दायक जय हे
भारत भाग्य विधाता
जय हे जय हे जय हे
जय जय जय जय हे

THE CONSTITUTION OF INDIA

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a SOVEREIGN DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens:

JUSTICE, social, economic and political;

LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship;

EQUALITY of status and of opportunity;

and to promote among them all

FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity of the Nation;

IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November, 1949, do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

भारतीय राष्ट्रध्वज का सफर

२२ जुलाई १९४७ को, संवैधानिक विधानसभा की बैठक में भारतीय राष्ट्रीय ध्वज अपने वर्तमान स्वरूप में आया। राष्ट्रीय ध्वज १५ अगस्त १९४७ से २६ जनवरी १९५० तक भारत के प्रभुत्व के रूप में फहराया गया और इसके बाद यह गणराज्य भारत के राष्ट्रीय ध्वज के रूप में स्थापित किया गया । ध्वज की चौडाई और लंबाई का अनुपात २:३ है और इसको बनाने के लिए केवल खादी कपडे का ही प्रयोग किया जाता है ।

जैसा कि हम सभी जानते है की, झण्डे के केंद्र में नीले अशोक चक्र के साथ केसरिया, सफेद और हरे रंग की तीन क्षैतिज धारियां है । अशोक चक्र या 'कानुन का पहिया' जो तीसरी शताब्दी ईसा पूर्व के मौर्य सम्राट अशोक के न्याय का प्रतिक था। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस के झण्डे से राष्ट्रीय ध्वज को अलग करने के लिए चरखे को चक्र द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था ।

ध्वज संहिता : ध्वज संहिता के अनुसार, भारत के नागरिकों को किसी भी दिन अपने घरो और कार्यालयोंपर भारतीय राष्ट्रीय ध्वज संहिता को २६ जनवरी २००२ को संशोधित किया गया था और नए ध्वज संहिता के अनुसार, भारत के सभी नागरिक अब वर्ष के किसी भी दिन राष्ट्रीय ध्वज को फहरा सकते है । लेकिन ध्वज संहिता में ध्वज के लिए लिखे निर्धारित दिशानिर्देशों का पालन करना होगा ।

झण्डा विनिर्माण : विनिर्माण मानक भारतीय मानक ब्युरो (बीआईएस) समिती द्वारा निर्धारित किया गया था । इसके साथ ही, समिती द्वारा उत्थान नियम भी निर्धारित किए गये थे । भारतीय राष्ट्रीय ध्वज बनाने के लिए केवल खादी कपडे का इस्तेमाल किया जाता है और दिशा-निर्देशों के अनुसार डाई, रंग, धागे को सम्मिलित करना चाहिए ।

संदर्भ : hindi.mapsofindia.com

मौलिक अधिकार (Fundamental Rights)

मौलिक अधिकारों का अर्थ :

इन अधिकारों को मौलिक इसलिये कहा जाता है क्योंकि इन्हें देश के संविधान में स्थान दिया गया है तथा संविधान में संशोधन की प्रक्रिया के अतिरिक्त उनमें किसी प्रकार का संशोधन नहीं किया जा सकता।.... मौलिक अधिकार न्याय योग्य है तथा समाज के प्रत्येक व्यक्ति को समान रूप से प्राप्त होते है।

१) समानता का अधिकार (अनुच्छेद १४-१८)

२) स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद १९-२२)

३) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद २३-२४)

४) धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (अनुच्छेद २५-२८)

५) संस्कृति और शिक्षा से सम्बद्ध अधिकार (अनुच्छेद २९-३०)

६) सांविधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद ३२-३५)

१) समानता का अधिकार (Right of Equality):

- धर्म, नस्ल, जाति, लिंग या जन्म के स्थानपर भेदभाव का निषेध (अनु. १५)
- लोक नियोजन के विषय में अवसर की समता (अनु. १६)
- अस्पृश्यता का निषेध (अनु. १७)
- उपाधियों का निषेध (अनु. १८)

२) **स्वतंत्रता का अधिकार (Right of Freedom):**

- भाषण और भावाभिव्यक्ती की स्वतंत्रता (अनु. १९)
- शांतिपूर्वक नि:शस्त्र एकत्र होणे की स्वतंत्रता (अनु. १९ ख)
- संघ, समुदाय या परिषद निर्मित करने की स्वतंत्रता (अनु.१९ग)
- राज्य के किसी भी कोने में निर्विरोध घुमने की स्वतंत्रता (अनु.१९घ)
- किसी भी तरह की आजीविका के चयन करने की स्वतंत्रता (अनु. १९छ)
- अपराधों के लिए दोषसिद्धी के विषय में संरक्षण (अनु. २०)
- प्राण और शारीरिक स्वाधीनता का संरक्षण (अनु. २१)
- बंदीकरण और निरोध से संरक्षण

३) **शोषण के विरुद्ध अधिकार (Right Against Exploitation):**

संविधान के अनुसार, मनुष्यों का क्रय-विक्रय, बेगार तथा किसी अन्य प्रकार का जबर्दस्ती लिया गया श्रम अपराध घोषित किया गया है। यह बताया गया है कि १५ वर्षे से कम आयुवाले बालकों को कारखाने, खान अथवा अन्य संकटमय नौकरी में नही लगाया जा सकता।

४) **धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार (Right to Freedom of Religion)**

- संविधान के द्वारा भारत एक धर्मनिरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। Articles 25 और 26 में धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार उल्लेखित है। राज्य में किसी भी धर्म को प्रधानता नहीं दी जाएगी। धर्मनिरपेक्ष राज्य का अर्थ धर्मविरोधी राज्य नहीं है। अत: प्रत्येक व्यक्ती की आय, नैतिकता और स्वास्थ्य को हानि पहुँचाये बिना अपना धर्मपालन करने का सम्पूर्ण अधिकार है।

५) संस्कृति और शिक्षा से सम्बद्ध अधिकार (Cultural & Educational Rights)

संविधान द्वारा भारतीय जनता की संस्कृति को बचाने का प्रयास किया गया है । अल्पसंख्यको की शिक्षा और संस्कृति से सम्बद्ध हितों की रक्षा की व्यवस्था की गई है । यह बताया गया है कि नागरिकों के किसी भी समूह को, जो भारत या उसके किसी भाग में रहता है, अपनी भाषा, लिपी और संस्कृति को सुरक्षित रखने का अधिकार है । धर्म के आधार पर किसी भी इंसान को शिक्षण संस्थान में नाम लिखाने से रोका नहीं जा सकता ।

६) संविधानिक उपचारों का अधिकार (Right to Constitutional Remedies)

भारतीय संविधान में मौलिक अधिकारों को अतिक्रमण से बचाने की व्यवस्था की गई है । संविधान के अनुसार, सर्वोच्च न्यायालय को मौलिक अधिकारों का संरक्षक माना गया है । प्रत्येक नागरिक को मौलिक अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायलय से प्रार्थना करने का अधिकार है ।

मौलिक कर्तव्य (Fundamental Duties)

- हर नागरिक का यह कर्तव्य होगा कि वह संविधान तथा उसके आदर्शों संस्थाओं का पालन करें और राष्ट्र ध्वज व राष्ट्रगान के प्रति सम्मानभाव रखे ।
- स्वतंत्रता के लिए राष्ट्रीय आंदोलन के प्रेरित करनेवाले उच्च आदर्शों को हृदय में संजोए रखे और उनका पालन करें ।
- भारत की प्रभुता, एकता और अखंडता की रक्षा करें ।
- स्वराष्ट्र की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहे ।
- देश में राज्य, भाषा, लिंग, वर्ण अथवा जाति के नामपर कलुषित वातावरण उत्पन्न नहीं करे ।

- प्राकृतिक पर्यावरण वन, नदी, झील, वन्य-प्राणी आदि को संरक्षित और सुरक्षित करें ।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोन, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना लगातार विकास करें ।
- हिंसा से दूर रहे और सार्वजनिक सम्पत्ति की सुरक्षा करें ।
- राष्ट्र को आगे बढ़ाने के लिए व्यक्तिगत तथा समुहिक प्रयास के लिए तत्पर रहे ।
- ८६ वाँ संविधान संशोधन अधिनियम २००२ के द्वारा संविधान में ११ मूल कर्तव्य और जोडा गया, जिसके अनुसार जो माता-पिता या संरक्षक हो, ६ वर्षे से १४ वर्षे के मध्य आयु के अपने बच्चों या यथास्थिती अपने पाल्य को शिक्षा का अवसर प्रदान करे ।

संदर्भ : https://www.khayalakhe.com

हम मानवाधिकार दिन क्यों मनाते हैं ?

सरकारने १९९३ में राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग की स्थापना की थी । राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एक स्वायत्त सार्वजनिक निकाय है, जो देश के नागरिकों के अधिकारों को बढावा देने और उनके सुरक्षा संबंधी जैसे कार्यों का प्रभावी ढंग से देखभाल करता है । आयोग का मुख्य अजेंडा सभी व्यक्तियों के जीवन, समानता, स्वतंत्रता और गरिमा से संबंधित अधिकारोंपर आधारित है ।

यहाँ नीचे समस्त समाज की भलाई हेतु भारत में लागू अधिकारों की सूची प्रस्तुत है ।

भोजन का अधिकार :

सुप्रिम कोर्ट द्वारा इस अधिकार को लागू करने का आदेश दिया गया था और उसके बाद इसने काफी प्रगति भी की । वर्ष २०११ में पारित भोजन बील का उद्देश्य शहरी आबादी के लिए ५० प्रतिशत और ग्रामीण इलाकों के लिए ७५ प्रतिशत भोजन की सब्सिडी (धन-रूपी-सहायता) प्रदान करता है। इस अधिकार के तहत 'गरीबी रेखा के नीचे' जीवन यापन करने वाले घरों के समूह को बहुत कम लागत पर गेहूँ, चावल और मोटा अनाज (दाल) प्रदान किया जाएगा ।

शिक्षा का अधिकार :

वर्ष २००९ में संसद द्वारा ७ से १४ साल की आयु के बीच के बच्चों के लिए नि:शुल्क शिक्षा का आदेश दिया गया था । एनएचआरसी का मानना है कि मानवाधिकार की शिक्षा स्कुलों और कॉलेजों के छात्रों के पाठ्यक्रम का एक अहम हिस्सा है ।

अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार :

भारत का संविधान अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है, जहाँ कोई भी चाहे वह स्त्री हो या पुरुष अपनी राय और विचारों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त कर सकता है । कानून भी विचार-विमर्श के समय खुले विचारों और स्वतंत्र प्रवाह को अपनाना पसंद करता है । यह अधिकार हमें अपने राजनैतिक मान्यताओं को खुलेतौर पर व्यक्त करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है और इसलिए यह अधिकार उचित निर्णय लेने में भी बेहतर भूमिका निभाता है ।

बलपूर्वक मजदूरी (श्रम) से स्वतंत्रता का अधिकार :

संविधान में सभी को उल्लेखित अधिकार बलपूर्वक मजदूरी को करने से प्रतिबंधित किया गया है । कानून भी अमानवीय परिस्थितीयों के तहत काम प्रदान करने वालो के विरुद्ध है ।

मानवाधिकार अनिवार्य रूप से हर किसी के लिए आवश्यक है। हलाँकि, कभी-कभी उनसे अवगत होना मुश्किल हो सकता है। एक मानवधर्म के हिसाब से सभी को यह सुनिश्चित कराना हमारा कर्तव्य है कि सभी इन अधिकारों का स्वतंत्रता से प्रतिपालन कर सकते है। संदर्भ : hindi.mapsofindi.com

Human Rights Day हर साल १० दिसंबर को मनाया जाता है । संयुक्त राष्ट्र ने १९५० में १० दिसंबर के दिन को मानवाधिकार दिवस घोषित किया था, जिसका उद्देश विश्वभर के लोगों का ध्यान मानवाधिकारों की ओर आकर्षित करता था ।

भारत में मानवाधिकार कानून २८ सितंबर १९९३ में अमल में आया।

मानवाधिकार दिवस लोगों को उनके अधिकारों के प्रति जागरूक करने के उद्देश से मनाया जाता है । मानवाधिकार में स्वास्थ्य, आर्थिक, सामाजिक और शिक्षा का अधिकार भी शामिल है । मानवाधिकार के मुलभूत नैसर्गिक अधिकार है, जिनसे मनुष्य को नस्ल, जाति, राष्ट्रीयता, धर्म, लिंग आदि के आधार पर वंचित या प्रताडित नहीं किया जा सकता ।

महाराष्ट्र गीत

बहु असोत सुंदर संपन्न की महा।
प्रिय अमुचा एक महाराष्ट्र देश हा ।।धृ।।

गगन भेदी गिरिविण अणु नच जिथे उणे।
आकांक्षा पुढती जिथे गगन ठेंगणे।
अटकेवरी जेथील तुरंगि जल पिणे।
तेथ अडे काय जलाशय - नदाविणे।
पौरुषासि अटक गमे जेथ दुःसहा।।
प्रिय अमुचा ..... हा ।।१।।

प्रासाद कशास जेथ हृदयमंदिरे।
सद्भावांचीच भव्य दिव्य आगरे।
रत्नां वा मौक्तिकाही मुल्य मुळि नुरे।
रमणीची कूस जिथे नृमणि खनि ठरे।
शुद्ध तिचे शीलहि उजळवि ग.हा ग.हा।।
प्रिय अमुचा ..... हा ।।२।।

नग्न खड्ग करि, उघडे बघुनि मावळे।
चतुरंग चमूहचेही शौर्य मावळे।
दौडत चहुकडुनि जवे स्वार जेथले।
भासति शतगुणित जरी असति एकले।
यत्रामा परिसुनि रिपु शमितबल अहा।।
प्रि अमुचा ..... हा ।।३।।

विक्रम वैराग्य एक जागि नांदति।
जरिपटका भगवा झेंडाही डोलती।
धर्म राज कारण समवेत चालती।
शक्ति युक्ति एकवटुनि कार्य साधिती।
पसरे यत्कीर्ती अशी विस्मयावहा।।
प्रिय अमुचा ..... हा ।।४।।

गीत मराठ्यांचे हे श्रवणी मुखी असो।
स्फूर्ति दिप्ति धृतिही देत अंतरी वसो।
वचनी लेखनिही मराठी गिरा दिसो।
सतत महाराष्ट्र - धर्म मर्म मनि वसो।
देह पडो सत्कारणि ही असे स्पृहा ।।
प्रिय अमुचा ..... हा ।।५।।

PRAYERS

सर्व धर्म प्रार्थना

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।
हरिः
ईशावास्यमिदं सर्वं यत्कि च जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भु जीथाः मा गृधः कस्यस्विद्धनम् ।।

पनाह

बिस्मिल्लाहिर रह मानिर रहीम
अऊजु बिल्लाहि मिनश् शैत्वानिर् रजीम् ।।
अल् फातिहा
बिस्मिल्लाहिर रह मानिर रहीम ।
अल् हम्दु लिल्लाहि रब्बिल् आलमीन ।
अल् रह् मानीर् रहीम् मालिकि यौमिद दीन ।
ओयाक नअबुदु व ओयाक नस्तओन ।
अिह् दिनस् सिरातल मुस्तकीम ।
सिरातल् लजीन अन् अम्त अलैहिम् ।
गैरिल मगदूबे अलैहिम वलद दुल्लीन ।।
आमीन

अनुसरणं

नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।
नमो तस्स भगवतो अरहतो सम्मासम्बुद्धस्स ।

सरणत्तयं

बुद्धं सरणं गच्छामि ।
धम्मं सरणं गच्छामि ।
संङ्घं सरणं गच्छामि ।

दुतियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
दुतियम्पि संङ्घं सरणं गच्छामि ।

ततियम्पि बुद्धं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि धम्मं सरणं गच्छामि ।
ततियम्पि संङ्घं सरणं गच्छामि ।

पञ्चसीलानि

१. पाणातिपाता वेरमणि सिक्खापदं समादियामि ।
२. अदिन्नदाना वेरमणि सिक्खापदं समादियामि ।
३. कामेसु मिच्छाचारा वेरमणि सिक्खापदं समादियामि ।
४. मुसावादा वेरमणि सिक्खापदं समादियामि ।
५. सुरा-मेरय-मज्ज पमादट्ठाना वेरमणि सिक्खापदं समादियामि ।

अनुसरण

त्या भगवान अरहत सम्यक सम्बुद्धाला नमस्कार असो.
त्या भगवान अरहत सम्यक सम्बुद्धाला नमस्कार असो.
त्या भगवान अरहत सम्यक सम्बुद्धाला नमस्कार असो.

तिसरण

मी बुद्धाला अनुसरतो.
मी (त्यांच्या) धम्माला अनुसरतो.
मी (त्यांच्या) संघाला अनुसरतो.

दुसऱ्यांदा सुद्धा मी बुद्धाला अनुसरतो.
दुसऱ्यांदा सुद्धा मी (त्यांच्या) धम्माला अनुसरतो.
दुसऱ्यांदा सुद्धा मी (त्यांच्या) संघाला अनुसरतो.

तिसऱ्यांदा सुद्धा मी बुद्धाला अनुसरतो.
तिसऱ्यांदा सुद्धा मी (त्यांच्या) धम्माला अनुसरतो.
तिसऱ्यांदा सुद्धा मी (त्यांच्या) संघाला अनुसरतो.

पंचसील

१. मी जीव हिंसेपासून अलिप्त राहण्याची शिकवण ग्रहण करतो.
२. मी चोरी करण्यापासून (न दिलेली वस्तु घेण्यापासून) अलिप्त राहण्याची शिकवण ग्रहण करतो.
३. मी कामवासनेच्या अनाचारापासून (व्यभिचार) अलिप्त राहण्याची शिकवण ग्रहण करतो.
४. मी खोटे बोलण्यापासून अलिप्त राहण्याची शिकवण ग्रहण करतो.
५. मी मद्य, मादक तसेच इतर सर्व नशा येणाऱ्या मादक वस्तुंच्या सेवनापासून अलिप्त राहण्याची शिकवण ग्रहण करतो.

PRAYER (SANSKRIT)

हरिः ॐ

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला, या शुभ्रवस्त्रावृता।
या वीणावरदण्डमण्डितकरा, या श्वेतपद्मासना।।
या ब्रह्माऽच्युतशंकर प्रभुतिभिर्देवैः सदा वन्दिता।
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाडयापहा।।
ॐ पूर्णमदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।।
ईशावास्यामिदं सर्व यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृथः कस्यसिद्धनम्।।
यं ब्रह्मावरुणेन्द्ररुमरुतस्तुन्वन्ति दिव्यैरस्तवैः।
वेदैः साङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः।।
ध्यानवस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनो।
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवाय तस्मै नमः।
मूकं करोति वाचालं पङ्गुलङ्घयते गिरिम्।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्दमाधवम्।।
नमोऽस्तु ते व्यास विशालबुद्धेः फुल्लारविन्दायतपत्रनेत्र।
येन त्वया भारततैलपूर्णः प्रज्ज्वालितो ज्ञानमयप्रदीप।।
व्यासाय विष्णुरुपाय व्यासरुपाय विष्णवे।
नमो वै ब्रह्मनिधये वासिष्ठाय नमो नमः।।
ॐ सहनाभवन्तु सह नौ भुनक्तु सह विर्यकरवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
ॐ शान्ति शान्ति शान्तिः।।

MORNING PRAYER

Father, we thank thee for the night,
And for the pleasant morning light,
For rest and food and loving care,
And all that makes the day so fair,
Help us to do the thing we should,
To be to others kind and good,
In all we do, in all we say,
To grow more loving every day.

Dear God,

Thank you for your great love and blessing over our lives. Thank you that your favor has no end, but it lasts for our entire lifetime. Forgive us for sometimes forgetting that you are intimately acquainted with all of our ways, that you know what concerns us, and you cover us as with a shield. We ask that we would walk in your blessing and goodness today. That your face would shine on us. That you would open the right doors for our lives and for our loved ones, that you would close the wrong doors and protect us from those we need to walk away from. Establish the work of our hands and bring to fulfillment all that you have given us to do in these days. We pray that you would make our way purposeful and our footsteps firm out of your goodness and love. Give us a heart of wisdom to hear your voice, and make us strong by your huge favour and grace.

Amen. Matthew 6:9-13

OUR FATHER IN HEAVEN

"Our Father in heaven,
hallowed be your name.

Your kingdom come,
your will be done,"

On earth as it is in heaven.
Give us this day our daily bread,

and forgive us our debts,
as we also have forgiven our debtors.

And lead us not into temptation,
but deliver us from evil.

EK ONKAR
(Guru Nanak Dev's Mool Mantra)

Original	Translation in English
Ek Onkar	There is only one God
Sat Naam	The name is Truth
Kartaa Purakh	He is the Creator
Nirbh a-o Nirvair	He has no fear, He has no hate
Akaal Moorat	He is Omnipresent
Ajonee Saibhn	Unborn and self illuminating
Gur Parsaad Jap	By Guru's grace, he is realized, Meditate his name
Aad sach	He has been true since time began
Jugaad sach	He has been true since agen
Hai bhee Sach	He is still true
Nanak Honsee Bhee Sach	Guru Nanak says He will always be true
Sochai soch na hov-a-ee	By thinking He will not be Reduced to Thought
Jay Sochee Lakh Var	Even by thinking Hundreds and Thousands of times

Chupai Chup Na Hov-a-ee	By remaining Silent, Inner Silence is not obtained
Jay Laa-i-Raha Liv Taar	Even by Remaining Lovingly Absorbed Deep Within
Bhukh-i aa Bhukh Na Utree	A Hungry Person's Hunger doesn't go
Jay Bannaa Puree-aa Bhaar	Even by Piling up Loads of Worldly Goods
Sehaas Si-Aanpaa	Man may Possess Millions of Wits
Lakh Ho Taa Ek Na Chalai Naal	But None of them will go along with you till the end.
Kiv Sachi-Aaraa Ho-ee-ai	So How Can You become Truthful ?
Kiv Korrhai Tootai Paal	And How Can the Veil of Illusion Be torn away ?
Hukam Rajaa-ee Chalna	O Nanak, It is written that You Shall Obey the Hukam Of his Command
Nanaak Likhi-aa Naal.	And Walk in the Way of His Will.

Moral Stories
(MARATHI)

वसलसुत्त

असे मी ऐकले आहे, एकदा भगवान श्रावस्तीच्या जेतवनात अनाथपिंडकाच्या आरामात रहात होते. तेव्हा सकाळच्या वेळी वस्त्र परिधान करून पात्र-चीवर घेऊन श्रावस्तीमध्ये भिक्षाटनास गेले. त्या वेळी अग्निकभारद्वाज ब्राह्मणाच्या घरी अग्नी प्रज्वलित केलेला होता, व आहुती देणे चालु होते. भगवानाला घरोघरी क्रमशः भिक्षाटन करीत येतांना दुरुनच पाहुन भारद्वाज ब्राह्मण भगवंतांना म्हणाला, ''हे मुण्डक', हे श्रमणक! हे वृषलक! तिथेच उभा रहा. ''त्याने असे म्हटल्यावर भगवान त्या अग्निकभारद्वाज ब्राह्मणाला म्हणाले, ''हे ब्राह्मण! वृषल कोण व वृषलाचे गुण कोणते हे तू जाणतोस काय?'' गोतमा! वृषल किंवा वृषलाचे गुण कोणते हे मी जाणत नाही. भगवान गोतमाने मला असा धर्मोपदेश करावा की, ज्यामुळे वृषल व वृषलाचे गुण कोणते हे मी जाणू शकेल.'' असे आहे तर, हे ब्राह्मण! ऐक व नीट लक्षात घे, हे मी तुला सांगतो. 'ठीक आहे' असे अग्निक भारद्वाज ब्राह्मणाने भगवंताना उत्तर दिले, आणि भगवान म्हणाले-

१. रागीट, सुड उगविण्याची बुद्धी असणारा, पापी गुणीजणास दोष लावणारा, मिथ्या-दृष्टी आणि मायावी अशा माणसाला वसल समजावे.

२. जरायुज किंवा अंडज प्राण्यांचा जो वध करतो, ज्याला प्राण्यांची दया नाही, त्याला वसल समजावे.

३. जो गावे आणि शहरे यांना वेढा घालून लुटतो, उध्वस्त करतो, ज्याला लुटारू म्हणून ओळखतात, त्याला वसल समजावे.

४. गावात किंवा अरण्यात जो इतरांच्या मालकीची वस्तु न दिली असतांनाही आपली समजून घेतो त्याला वसल समजावे.

५. जो कर्ज घेतो पण ते परत मागितले असता, ''मला तुझे देणेच नाही'', असे म्हणून पळून जातो त्याला वसल समजावे.

६. जो कोणत्याही क्षुल्लक वस्तुच्या इच्छेने वाटमारी करतो व लोकांना

लुटतो त्याला वसल समजावे.

७. जो स्वत:साठी, दुसऱ्यासाठी किंवा धनाच्या लोभाने विचारले असता खोटी साक्ष देतो त्याला वसल समजावे.

८. जो बळजोरी करून अथवा प्रेमाने आपल्या जाती बांधवांच्या स्त्रियांशी वाम मार्गाचे आचरण करतांना दिसतो त्याला वसल समजावे.

९. म्हाताऱ्या व थकलेल्या आई-वडिलांना स्वत: सामर्थ्यवान असूनही त्यांचे पालन-पोषण (सन्मानासह) करीत नाही त्याला वसल समजावे.

१०. जो आई-वडिल-बंधु-भगिनी अथवा सासु यांना मारतो अथवा शिव्या देतो त्याला वसल समजावे.

११. हिताची गोष्ट विचारली असता जो अनर्थकारक व हानिकारक उपाय सांगतो किंवा मुद्दामपणे संदिग्ध बोलतो त्याला वसल समजावे.

१२. जो पापकर्म करतो पण ते लोकांनी जाणू नये या इच्छेने गुप्तपणे कार्य करीत असतो त्याला वसल समजावे.

१३. जो दुसऱ्यांच्या घरी जाऊन उत्तम भोजन करतो परंतु आपल्या घरी आल्यावर त्या गृहस्थाचा आदर-सत्कार करीत नाही त्याला वसल समजावे.

१४. जो श्रमण, ब्राह्मण अथवा दुसऱ्या एखाद्या गरीब माणसाला खोटे बोलून फसवितो त्याला वसल समजावे.

१५. जेवण करतांना आलेल्या श्रमणाला वा ब्राह्मणाला जो रागावितो व काहीही देत नाही त्याला वसल समजावे.

१६. मोहाने लिप्त जो थोड्याशा फायद्याकरिता भलत्या-सलत्या गोष्टी सांगतो त्याला वसल समजावे.

१७. जो अहंमन्यतेने पतित होऊन स्वत:ची स्तुती करतो व दुसऱ्या लोकांचा तिरस्कार करतो त्याला वसल समजावे.

१८. दुसऱ्यांवर रागाविणारा, कंजुष, सदिच्छा नसलेला, मत्सरी शत्रुत्वाची

भावना असणारा, निर्लज्ज, पापी-दुराचारी असा मनुष्य वसल समजावा.

१९. जो बुद्धाला, त्याच्या श्रावकाला अथवा परिव्राजकाला वा गृहस्थाला शिव्या देतो त्याला वसल समजावे.

२०. जो अरहन्त नसून स्वत:ला अरहन्त म्हणवितो तो सर्व जगात चोर होय; तो वसलाधम होय. हे वसल आहेत, हे मी तुम्हास समजावून दिले आहे.

२१. जन्माने कुणी ब्राह्मण होत नाही अथवा जन्माने कुणी वसल होत नाही, कर्मानेच वसल व कर्मानेच ब्राह्मण होतो.

२२. याकरिता मी एक उदाहरण सांगतो. त्यानेही आपण समजू शकाल. कुत्र्याचे मांस खाणारा चाण्डालपूत्र मातंग प्रसिद्ध होऊन गेला.

२३. त्या मातंगाला अत्यंत श्रेष्ठ आणि अत्यंत दुर्लभ यश मिळाले. त्याच्या सेवेला पुष्कळ क्षत्रिय आणि ब्राह्मण हजर असत.

२४. देवयानामध्ये (श्रेष्ठ यान) बसून निष्पाप आणि श्रेष्ठप्रतीच्या मार्गाने जाणारा तो विषयवासनेचा क्षय करून ब्रह्मलोकास गेला. ब्रह्मलोकी जन्मण्याकरिता (श्रेष्ट जीवनात)त्याची जात त्याला आड आली नाही.

२५. स्वाध्याय संपन्न कुळात उत्पन्न झालेले नामधारी वैदिक ब्राह्मण पुष्कळदा पापकर्मे आचरित असलेले दिसून येतात.

२६. ते इहलोकी निन्द्य होतात व परलोकी दुर्गतीला जातात. त्यांचा जन्म दुर्गतीपासून किंवा निंदेपासून त्यांचे रक्षण करीत नाही.

२७. (म्हणून) जन्माने कुणीही वसल होत नाही किंवा जन्माने कुणीही ब्राह्मण होत नाही, कर्मानेच वसल आणि कर्मानेच ब्राह्मण होतो.

असे सांगितल्यावर अग्निकभारद्वाज ब्राह्मण भगवंतांना म्हणाला ''धन्य धन्य, हे गोतमा!... भिक्खुसंघाला अनुसरतो, आजपासून आमरण अनुसरलेला आहे, असे भगवान गोतमाने समजावे.''

|| वसलसुत्त समाप्त ||

सुभासित निवडक (धम्मपद गाथा भाषांतर)

१. वैराने वैर शांत होत नाही, तर अवैरानेच वैर शांत होते. हाच सदाचा नियम आहे.

२. प्रमाद न करणे अमृतपद आहे, आणि प्रमाद करणे मृत्युपद आहे प्रमाद न करणारे अमर आहेत, परंतु प्रमाद करणारे (जिवंत असूनही) मृतवतच आहेत.

३. जेवढे भले आई-वडील किंवा इतर नातेवाईक करू शकत नाहीत. त्यापेक्षा जास्त भले योग्य मार्गावर लागलेले चित्त करीत असते.

४. चंदन किंवा तगर, कमल किंवा जुई या सर्वांच्या सुगंधापेक्षा सीलाचा सुगंध चांगला आहे.

५. दंडाला सगळेच घाबरतात, सर्वांनाच आपला जीव प्रिय आहे, (म्हणून) सर्वांना आपल्या सारखे समजून ना कुणाला मारावे, ना कुणाचा घात करावा.

६. मनुष्य स्वतःच स्वतःचा मालक आहे, दुसरा कुणी त्याचा मालक होऊ शकत नाही, त्याने स्वतःला नियंत्रित केल्यास तो दुर्लभ यशाला प्राप्त होऊ शकतो.

७. सुचरित धम्माचे आचरण करावे, दुराचरण करू नये, धम्मचारी इहलोकात आणि नंतरच्याही लोकामध्ये दोन्ही ठिकाणी सुखाने राहतो.

८. पाप न करणे, पुण्यांचा (कुशल कर्म) संचय करणे आणि चित्ताला परिशुद्ध करणे, हेच बुद्धाचे शासन आहे.

९. बुद्धाचा जन्म सुखकारक आहे, सद्धम्माचा उपदेश सुखकारक आहे, संघात ऐक्य सुखकारक आहे आणि एकतायुक्त होऊन तप करणे सुखदायक आहे.

१०. निरोगी असणे परम लाभ आहे, संतोष परम धन आहे, विश्वास सर्वात मोठे नाते आहे, निर्वाण सर्वात मोठे सुख आहे.

११. जो सीलाने आणि दर्शनाने (सम्यक दृष्टीने) संपन्न आहे, धम्माप्रमाणे

आचरण करणारा आहे आणि स्वत:ची कामे करणारा आहे, अशा (पुरुषा)शी लोक प्रेम करतात.

१२. अक्रोधाने क्रोधाला जिंकावे, असाधुला साधुत्वाने जिंकावे, कंजुषास दानाने जिंकावे आणि खोटे बोलणाऱ्यास सत्याने जिंकावे.

१३. रागासारखा अग्नि नाही, द्वेषासारखा ग्रह (मळ) नाही, मोहासारखे जाळे नाही, तृष्णेसारखी नदी नाही.

१४. जास्त बोलल्याने कुणी धर्मधर होत नाही, परंतु थोडेसे ही ऐकून जो धम्माला प्रत्यक्ष आचरणाने पहातो आणि जो धम्मात प्रमाद करीत नाही, तोच धर्मधर होय.

१५. 'सर्वच संस्कार अनित्य आहेत'- असे जेव्हा प्रज्ञेने पाहतो, तेव्हा सर्वच दुक्खातून निर्वेदास प्राप्त होतो, हाच विसुद्धीचा मार्ग आहे.

१६. शेतामधील दोष तृण आहे, प्रजेतील दोष राग आहे, याकरिता रागविहीन माणसास दान दिल्याने महाफल मिळते.

१७. डोळ्यांचे संयम चांगले आहे, कानाचे संयम चांगले आहे, नाकाचे संयम चांगले आहे आणि जिभेचे संयम चांगले आहे.

१८. तृष्णेमुळे शोक उत्पन्न होतो, तृष्णेमुळे भय उत्पन्न होते, तृष्णेपासून मुक्त माणसास शोक राहत नाही, मग भय कुठून राहणार ?

१९. कायिक दुराचारापासून सरंक्षण करावे, कायेने संयमित रहावे, कायिक दुराचाराला सोडून कायिक सदाचाराचे आचरण करावे.

२०. वाचिक दुराचारापासून संरक्षण करावे, वाचेने संयमित रहावे, वाचिक दुराचाराला सोडून वाचिक सदाचाराचे आचरण करावे.

२१. मानसिक दुराचारापासून संरक्षण करावे, मनाने संयत रहावे, मानसिक दुराचाराला सोडून मानसिक सदाचाराचे आचरण करावे.

२२. जटा वाढविल्याने, गोत्राने, जन्माने कुणी ब्राह्मण होत नाही, तर ज्याच्यामध्ये सत्य आणि धर्म आहे, तोच सुचि (पवित्र) आणि तोच ब्राह्मण आहे.

२३. ज्याच्या कायेने, वाचेने आणि मनाने दुष्कृत्य होत नाहीत, (जो या) तिन्हीमध्ये संयमित आहे, त्याला मी ब्राह्मण म्हणतो.

आई-वडीलांची सेवा करणे उत्तम मंगल आहे

तथागत बुद्धाने अनाथपीडिकांच्या जेतवनरामामध्ये कुशल पुरुषाला संबोधित करतांना उत्तम मंगलाविषयी सांगितले -

'मातापितु उपट्ठानं, पुत्तदारस्स सङ्गहो ।
अनाकुला च कम्मन्ता, एतं मङ्गलमुत्तमं ।।'

अर्थात: 'आई-वडीलांची सेवा करणे, पुत्र व पत्नीचे पालनपोषण करणे आणि कोणतेच वाईट कृत्य न करणे, हेच उत्तम मंगल होय.

आई-वडीलांची सेवा करणे प्रत्येक व्यक्तीचे नैतिक कर्तव्य आहे. आई-वडीलांची सेवा प्राचीनकाळापासून एक धम्म परंपरेच्या रूपांमध्ये चालत आलेली आहे. आजचा जो पुत्र आई-वडीलांच्या सेवेमध्ये लागलेला आहे, ज्या तो आणि त्याची पत्नी क्रमशा वडील आणि आई बनतील आणि त्यांचे पुत्र त्यांची सेवा करतील. जो पुत्र व त्याची पत्नी या कर्तव्याला पार पाडणारा नाहीत, ते आपल्या पुत्राच्या सेवेपासून वंचित राहतात. इथे या हाताने घेणे आणि त्या हाताने देणे हा नियम प्रत्यक्षात लागू होतो.

आई-वडील मुलांना जन्म देतात. मुलांचे पालन-पोषण करतात, त्यांची प्रत्येक अडचणीतून सुरक्षा करतात. त्यांचे शिक्षण करून आपले जीवनयापन करतात, या योग्य बनवितात. पुत्राचा विवाह करून आई-वडीलांना अतिशय आनंद होतो नंतर आजी-आजोबा झाल्यानंतर त्यापेक्षाही जास्त आनंद होतो. शेवटी म्हातारपणात दुर्बल होऊन जातात, तेव्हा त्यांना सहारा देण्याची आवश्यकता असते. ते आशावान असतात की, त्यांचे पुत्र त्यांचे देखभाल करतील आणि सेवेद्वारे त्यांना प्रत्येक संकटातून वाचवितील. जर म्हाताऱ्या आई-वडीलांची ही आशा पूर्ण न होता ते निराश झाले तर त्यांच्या मनावर फार मोठा आघात होतो.

आई-वडीलांची सेवा करणाऱ्याचे आयुष्य वाढते, त्याचे यश वाढते आणि त्याच्या सुख आणि समृद्धीमध्ये वाढ होते. आई-वडीलांचा आशिर्वाद विशेष फलदायी होतो.

या विषयाशी संबंधित 'कण्ह जातकाची' कथा याप्रमाणे आहे -

वाराणसीमध्ये ब्रह्मदत्त नावाचा राजा राज्य करीत होता. त्याचवेळी बोधिसत्वाचा जन्म बैलाच्या योनीमध्ये झाला. हळूहळू मोठा होऊन तो तरुण बछडा बनला. त्याचे स्वामी एका म्हातारीच्या घरामध्ये भाड्याने राहत होते. भाडे न देऊ शकल्यामुळे त्या बदल्यात त्याने एक दिवस तो बछडा त्या म्हातारीला देऊन दिला. म्हातारी भात व चारा खाऊ घालून त्या बछड्याला आपल्या पुत्राप्रमाणे पाहून त्याचे पालन करू लागली. त्या बछड्याचे नाव आर्य्यका-कालक पडले. तरुण झाल्यावर तो बछडा काळ्या रंगाचा झाला, त्याच गावातील इतर बैलासोबत तो चरू लागला. तो फार सुशिल स्वभाववाला होता. गावातील बालक त्याला सींग, कान व गळ्याला पकडून लटकत होते. ते त्याची शेपटी सुद्धा पकडत होते. पाठीवर बसत होते. परंतु तो कोणत्याही बालकाला मारीत नव्हता.

एका दिवशी त्याने विचार केला, 'माझी माता दरिद्री आहे, तिने मला फार कठीणतेने पुत्राप्रमाणे वागविले. मी कां नाही मजुरी करून तिची गरीबी दूर करू? त्यानंतर तो मजुरी शोधत फिरू लागला. एका दिवशी एका व्यापारी पुत्राचे पाचशे छकडे (बंडी) एका विषम ठिकाणी येऊन फसले. ते त्या व्यापाऱ्याच्या बैलगाड्यांना काढू शकले नाही. पाचशे गाड्यांचे बैल एका जु मध्ये जोडल्यावर सुद्धा एक सुद्धा गाडी ते काढू शकले नाही.'

त्यावेळी बोधिसत्व सुद्धा गावातील बैल-गायांसोबत त्याच विषमठिकाणी चरत होते. व्यापारीपुत्र गो-शास्त्रज्ञ होता. त्याने तिथे चरत असलेल्या त्या बैलांना चरत असतांना विचार केला, 'या बैलांमध्ये या गाड्यांना काढू शकणारा कोणी बैल आहे या नाही ? विचार करीत असतांना बोधिसत्वाला पाहुन, हा बैल आहे, हा माझ्या गाड्यांना काढू शकेल, असा विचार करून गायी चरणाऱ्याला विचारले, 'याचा स्वामी कोण

आहे?' मी याला गाड्यांना जोतून गाड्यांना काढल्यावर स्वामीला मजुरी देईल.

गाई चरणाऱ्याने उत्तर दिले, 'या ठिकाणी त्याचा स्वामी नाही पकडून जोतून घ्या.'

तो व्यापारी बोधिसत्वाला नाकामध्ये दोर बांधून, ओढून घेऊन जाऊ शकला नाही. ''मजुरी देशील तर जाईल'' असा विचार करून बोधिसत्व गेले नाही. व्यापारीपुत्राने त्याचा अभिप्राय जाणून विचारले, ''स्वामी! तुमच्याद्वारे पाचशे गाड्या ओढून काढून दिल्यास एक-एका गाडीची मजुरी दोन कार्षापण करून एक हजार (कार्षापण) देईल. 'तेव्हा बोधिसत्व आपोआप जाऊ लागले. लोकांनी त्यांना गाड्यांना जोतले. त्यांनी एकाच झटक्यात फसलेल्या गाड्यांना काढून योग्य ठिकाणी आणून ठेवल्या. याप्रकारे सर्व गाड्या काढून दिल्या गेल्या.''

व्यापारीपुत्राने एका गाडीसाठी एक या हिशोबाने पाच (कार्षापणाची)ची थैली बनवून बोधिसत्वाच्या गळ्यात बांधली. बोधिसत्वाने विचार केला, हा मला योग्य मजुरी देत नाही आहे, म्हणून मी याला जाऊ देणार नाही. तो सर्वात समोर असलेल्या गाडीच्या समोर मार्ग रोखून उभा राहिला. त्याला हटविण्याचा फार प्रयत्न केल्यावर सुद्धा ते त्याला तिथून हटवू शकले नाही.

व्यापारीपुत्राने विचार केला, 'असे वाटते की, हा आपल्या कमी मजुरीला जाणतो, म्हणून एका कपड्यामध्ये एक हजाराची गाठ बांधून ही तुझी गाड्या काढून देण्याची मजुरी आहे, असे म्हणून त्याच्या गळ्यात लटकवून दिले.'

बोधिसत्व एक हजाराची थैली घेऊन म्हाताऱ्या मातेजवळ गेले. गावातील बालक, आर्य्यका-कालकाच्या गळ्यात काय बांधले आहे, जाणण्यासाठी जवळ येऊ लागले. बोधिसत्व त्यांचा पाठलाग करीत, त्यांना दुरूनच पळवून मातेजवळ गेले. बोधिसत्व पाचशे गाड्या काढल्यामुळे ते

थकलेले वाटत होते आणि त्यांचे डोळे सुद्धा लाल होते. म्हातारीने त्यांच्या गळ्यात अडकलेली एक हजाराची थैली पाहून, विचारू लागली, ''लाल! हे तुला कुठून मिळाली?'' नंतर गावातील लोकांकडून सविस्तर माहिती जाणून म्हणाली, ''तात! मी काय तुझ्या मजुरीने जगण्याची भूकेली आहे?'' तू कशासाठी एवढे संकट ओढविले? असे म्हणून त्या म्हाताऱ्या मातेने बोधिसत्वाला गरम पाण्याने स्नान करविले. सर्व शरीरावर तेल लावले, पाणी प्यायला दिले, अनुकूल भोजन दिले. आयुष्य समाप्ती नंतर ते दोघेही परिनिर्वाणाला प्राप्त झाले.

या कथेच्या माध्यमातून आई-वडीलांची सेवा करण्याची शिकवण दिल्या गेली आहे. एक पशु सुद्धा आपल्या हितकारी स्वामीच्याप्रति कृतज्ञ होऊन आपल्या सामर्थ्यानुसार त्याची सेवा करतो. तेव्हा काय मनुष्याच्या आत अशी सेवा-भावना उत्पन्न नाही झाली पाहिजे? मनुष्याने तर अधिकाधिक आई-वडीलांची सेवा करीत त्यांच्या आवश्यकतांची पूर्ती केली पाहिजे.

-महामङ्गलसुत्त
(खुद्दकनिकाय अट्ठकथा)

मुर्खांची संगती करू नये, तर बुद्धिमानांची संगती करावी हेच उत्तम मंगल आहे

तथागत बुद्धांनी श्रावस्ती नगरीमध्ये अनाथपिडिकाच्या जेतवनराम विहारात एका कुशल पुरुषाला संबोधित करतांना उत्तम मंगलाच्या विषयामध्ये याप्रकारे सांगितले -

'असेवना च बालानं, पण्डितानं च सेवना ।
पूजा च पुजनीयानं, एतं मङ्गलमुत्तमं ।।'

'अर्थात मुर्खांची संगती न करणे, बुद्धिमानांची संगती करणे आणि पुजा करण्यास योग्य अशा लोकांची पूजा करणे हे उत्तम मंगल आहे.'

तथागतांनी मुर्खांच्या संगतीचा निषेध केला आहे. मुर्ख कोण? असा प्राणी जो विचार करून कार्य करीत नाही, ना ही आपल्या कर्माच्या परिणामांची पर्वा करतो. अशा मुर्ख व्यक्तींची सोबत दुखाचे कारण होते. मुर्ख केवळ आपल्या स्वत:ची हानी करीत नाहीत तर त्यांच्या संपर्कात जे ही लोक येतात, त्यांची सुद्धा हानी होते. मुर्खांची संगती करणाऱ्यावर सुद्धा त्याच्या मुर्खतेचा काही ना काही प्रभाव निश्चितच पडतो. मुर्खांच्या सोबत राहणाऱ्यांच्या स्वताची छवी सुद्धा दुर्मिळ होऊन जाते. मुर्ख अनुशासन आणि सद्धम्माची गोष्ट ऐकून रूष्ट होऊन जातात आणि कधी-कधी भांडण सुद्धा करून बसतात.

राजगढामध्ये दोन मुर्ख मित्र राहत होते, जे आपल्या मुर्खतेमुळे बदनाम होते. सर्व त्यांच्या सोबत उपहासाने राहत होते. कोणी त्यांना कामावर ठेवण्यास तयार नसत. त्यामुळे निराश होऊन ते दोन्ही मुर्ख मित्र राजगढला सोडून दुसऱ्या नगरामध्ये निघून गेले. त्या नवीन देवपूर नगरामध्ये दोघेही एका व्यापाऱ्याजवळ नोकरी करू लागले. तिथे सुद्धा त्यांनी आपल्या आचरणाने आपल्या मुर्खतेचा परिचय दिला. त्या उदार हृदयी व्यापाऱ्याने विचार केला की, ते हळूहळू सर्व शिकतील. एका दिवशी व्यापाऱ्याने

विचारले -

''काय तुम्ही नाव चालविणे जाणता ?''

होय स्वामी! आम्ही आमच्या गावच्या नदीमध्ये सुद्धा नाव चालवित होतो. ठिक आहे, तर तुम्ही आज रात्रीमध्ये माझा माल नावेमध्ये टाकून स्वराजपूर घेऊन जा. ते नगर याच नदीच्या प्रवाहाच्या दिशेमध्ये समोर आहे. रात्रीमध्ये जाऊन तुम्ही सकाळपर्यंत तिथे पोहचाल. 'जशी आज्ञा स्वामी! आम्ही तयार आहोत.' परंतु याद राखा, या मालाचे उद्या सकाळपर्यंत स्वराजपूरला पोहोचणे आवश्यक आहे. 'पोहोचून जाईल स्वामी', आपण निश्चित राहा.

व्यापाऱ्याने पोत्यांमध्ये भरलेला आपला माल नावेवर टाकला. जिथे माल द्यावयाचा होता, त्या व्यापाऱ्याचे नाव सांगितले. ती व्यक्ती माल घेण्यासाठी नदीवरच येणार होती.

'पहा, माल टाकल्या गेला आहे, तुम्ही दोन तास आराम करून नंतर रात्रीमध्ये नाव घेऊन निघून जाल.'

सर्व काही समजावून व्यापारी निघून गेला. ते मुर्ख मित्र काही वेळ आराम केल्यानंतर उठले आणि नावेमध्ये जाऊन बसले. त्यांनी पाणी कापण्याची काठी घेतली आणि त्या काठीने ते पाणी कापू लागले. दोघेही फार प्रसन्न होते, की त्यांना काम मिळाले. त्यांनी आपसात म्हटले की, ते कामाला पूर्ण करून निश्चित सफल होतील. वेळ निघू लागली, रात्रीच्या अंध:कारामध्ये नदीच्या वाहण्याचा आवाज ऐकू ऐत नव्हता. ते मुर्ख वाहत्या पाण्याला पाहुन समजत होते की, नाव चालत आहे. शेवटी पूर्व दिशेमध्ये उजेड दिसू लागला आणि त्याने सुर्योदयाचा संकेत दिला. चारहीकडचे दृश्य पाहुन ते म्हणू लागले, 'अरे! ह्या नवीन नगरातील नदीचा तट तर देवपूरसारखाच आहे. चांगले आहे, आपण आराम करू या, तो व्यक्ती माल घेण्यासाठी स्वता नावेवर येऊन जाईल.'

त्या मुर्खांचा स्वामी सकाळी फिरण्यासाठी नदीच्या किनाऱ्यावर

आला. त्याने नावेवर टाकलेले सामान तसेच त्या सेवकांना नावेमध्ये बसलेले पाहिले. मुर्खांनी व्यापाऱ्याला पाहुन आश्चर्याने विचारले - 'स्वामी! आपण इथे कसे ? काय आपण दुसऱ्या नावेने आले ?' 'अरे मुर्खांनो तुम्ही गेलेच नाही, याच नदीच्या किनाऱ्यावर बसून आहात ?', 'नाही स्वामी! आम्ही तर पूर्ण रात्र नाव चालविली. आता थकून आराम करीत होतो.'

'तुमचा सर्वनाश हो! व्यापारी चिडून बोलला'

'स्वामी ! काय आमच्याकडून काही अपराध झाला ?'

'अरे महामुर्खांनो! तुम्ही नावेची दोरी तर उघडलीच नाही आणि काठी (पतवार) चालवू लागले. नाव जिथली तिथेच आहे. तुम्ही दोघांनी स्वराजपूरला हा माल न पोहोचून माझे खूप नुकसान केले आहे.'

व्यापाऱ्यांनी त्या मुर्खांना मार-पिट करून पळवून लावले. तो पश्चाताप करीत बोलला, ''काश! मी या मुर्खांना या कामावर न ठेवले असते. वास्तवामध्ये मुर्खांची संगती दुखदायी असते.''

-महामंङ्गलसुत्त
(खुद्यकनिकाय अट्टकथा)

सीलविमंसनजातक

फार पूर्वी वाराणसीमध्ये ब्रह्मदत्त राजा राज्य करीत असतांना बोधिसत्वाने एका ब्राह्मणकुळात जन्म घेतला. वयात आल्यानंतर तिथे वाराणसीमध्येच प्रसिद्ध गुरुजवळ पाचशे विद्यार्थ्यांचा प्रमुख घेऊन विद्या शिकू लागला. आचार्यास तरुण मुलगी होती. त्याने विचार केला, ह्या विद्यार्थ्यांच्या आचरणाची परीक्षा करून जो शीलसंपन्न असेल त्यालाच मुलगी देईल. एके दिवशी त्याने विद्यार्थ्यांना बोलावून म्हटले, ''मुलांनो! माझी मुलगी वयात आली आहे. मी तिचे लग्न करणार आहे. त्यासाठी वस्त्र अलंकार प्राप्त करणे आवश्यक आहे, ते मिळविण्याकरिता तुम्ही आपल्या नातलगाकडून ते पहात नसतांना चोरून वस्त्र व अलंकार हरण करून आणा. कोणीही न पहाता आणलेले वस्त्र व अलंकार मी ग्रहण करीन. जे आणतांना कोणी पाहिले असेल ते वस्त्रालंकार मी घेणार नाही.'' त्यांनी 'ठीक आहे' असे म्हणून त्यानंतर नातेवाईकांची नजर चुकवून चोरून वस्त्रालंकार वगैरे आणू लागले. त्यांनी वस्त्र व अलंकार (प्रत्येकाचे) वेगवेगळे ठेवले. बोधिसत्वाने मात्र काहीच आणले नाही. तेव्हा आचार्य म्हणाले, ''अरे, तू काहीच आणले नाहीस.'' होय आचार्य! ''तुम्ही कोणीही पहात असतांना आणलेली वस्तू ग्रहण करीत नाही आणि मला पाप करणे योग्य वाटत नाही.'' हे स्पष्ट करतांना खालील दोन गाथा म्हटल्या -

अशी कोणतीच जागा नाही की, जिथे पाप करीत असतांना कोणीच नसेल. परंतु अज्ञानी मनुष्य रानातील प्राणी वगैरे पहात असतांना सुद्धा त्या ठिकाणास गुप्त ठिकाण समजतो.

मला कोणत्याच ठिकाणी गुप्तता दिसत नाही. कोणतेच ठिकाण शुन्य नसते. जिथे दुसरा कोणीही दिसत नाही तिथे सुद्धा शुन्याचा अभाव नसतो कारण निदान मी तरी तिथे असतो.

त्याच्यावर प्रसन्न होऊन आचार्य म्हणाले, ''मुला! माझ्या घरी संपत्ती नाही, असे नाही परंतु शीलसंपन्न व्यक्तीला मुलगी देण्याची माझी इच्छा होती. तुम्हा विद्यार्थ्यांची परीक्षा पाहण्याकरिता मी असे केले. त्या सर्वांमध्ये तुलाच मुलगी देणे योग्य आहे. ''असे म्हणून मुलगी अलंकृत करून ती बोधिसत्वाला दिली आणि इतर विद्यार्थ्यांना म्हणाले, 'तुम्ही आणलेले सर्व दागदागिणे आपआपल्या घरी घेऊन जा.''

जातक कथा (निवडक कथांचा संग्रह)
अनु. : पालीभाषा प्रचार समिती, दीक्षाभूमी, नागपूर

गिज्झजातक

फार पूर्वी वाराणसीमध्ये ब्रह्मदत्त राजा राज्य करीत असतांना गृध्र पर्वतावर गिधाड योनीमध्ये जन्म घेऊन आपल्या (वृद्ध) मातापित्यांचा सांभाळ करीत होता. एकदा फारमोठा वादळी पाऊस आला. गिधाड वारा आणि पाऊस सहन न करू शकल्यामुळे थंडीच्या भीतीने वाराणसीला जाऊन तिथे परकोटाच्या खड्ड्याजवळ थंडीने कुडकुडत बसला. वाराणसीमधील सावकार नगरातून निघून स्नान करण्याकरिता जात असतांना त्यांनी त्या गिधाडास त्रस्त पाहुन जिथे पाऊस पडत नव्हता अशाठिकाणी पोहोचविले. तिथे अग्नी पेटवून खाटिक खाण्यातून मांस आणून देऊन त्यास संरक्षण दिले. वारा-पाऊस शांत झाल्यावर, निरोगी झाल्यावर पर्वतावर (परत) गेले. तिथेच एकत्र येऊन असे ठरविले की, ''वाराणसीच्या सावकाराने आमच्यावर उपकार केले. उपकार करणाऱ्याची प्रत्युपकाराने परतफेड करावी, म्हणून यापुढे तुमच्यापैकी ज्या कोणाला जे वस्त्र किंवा आभूषण मिळेल, त्यांनी वाराणसीच्या सावकाराच्या मोकळ्या अंगणात नेऊन टाकावेत. त्यानंतर गिधाड, लोकांनी उन्हात वाळविण्याकरिता टाकलेली वस्त्रे व आभूषणे त्यांची नजर चुकवून ज्याप्रमाणे घार मांसाचा तुकडा एकदम झडप घालून घेऊन जाते त्याप्रमाणे उचलून घेऊन वाराणसीच्या सावकाराच्या अंगणात टाकत असत. सावकाराने गिधाडांचा वस्त्र आभूषणे आणण्याचा स्वभाव जाणून सर्व वेगळे ठेवले, 'गिधाडे नगर लुटतात' राजाला सांगण्यात आले. राजा म्हणाला, ''एका गिधाडाला तुम्ही पकडा. हरण करून नेलेला सर्व माल मी मागवून घेईन'' आणि ठिकठिकाणी फासे व जाळे टाकण्यात आले. माता-पित्यांचे पालन-पोषण करणारे ते गिधाड पाशामध्ये अडकले. त्याला पकडून, 'आम्ही राजाला दाखवू' असे म्हणून नेत होते. राजाकडे, जाणाऱ्या वाराणसीच्या त्या सावकाराने गिधाडाला पकडून नेणाऱ्या त्या माणसांना पाहिले. 'या गिधाडाला बाधा पोहोचू नये' म्हणून सावकार त्याच्या बरोबरच गेला. राजाने

गिधाडाला पाहिले आणि राजाने त्याला विचारले, 'तुम्ही नगर लुटून वस्त्रादि ग्रहण करता ?' 'होय, महाराज!' 'ते कोणाला दिले ? वाराणसीच्या सावकाराला' कां बरे ? कोणत्या कारणाने ? 'आम्हाला त्याने जीवदान दिले. उपकारांची फेड प्रत्युपकाराने करावी म्हणून दिले.' तेव्हा राजाने, गिधाडे तर शंभर योजने दूर ठेवलेले प्रेत पहातात, मग तू जवळच कां पाहिला नाहीस? असे म्हणून पहिली गाथा म्हटली,

'गिधाड जर शंभर योजनावरील प्रेत अवलोकन करू शकते तर मग जवळच असून देखील जाळे व पाश कां पाहत नाही ?'

गिधाडाने त्याचे बोलणे ऐकूण दुसरी गाथा म्हटली, 'जेव्हा विनाशकाल आलेला असतो तेव्हा जवळ असलेले जाळे किंवा पाश देखील दिसत नाही.'

गिधाडाचे बोलणे ऐकून राजाने सावकाराला विचारले, ''हे श्रेष्ट सावकारा! काय खरोखर गिधाडांनी तुमच्या घरी वस्त्राभरणे आणली काय? 'महाराज! सत्य आहे.'' ते कोठे आहे ? ''महाराज! मी सर्व वेगळे ठेवले आहेत. ते ज्यांचे असेल त्यांना मी देईन, या गिधाडाला सोडून द्यावे.'' हा गिधाडाला सोडून त्या श्रेष्ठ सावकाराने सर्व वस्तु ज्यांच्या त्यांना परत दिल्या.

जातक कथा (निवडक कथांचा संग्रह)

अनु. : पालीभाषा प्रचार समिती

दीक्षाभूमी, नागपूर

साधुसीलजातक

प्राचीन काळी वाराणसीमध्ये ब्रह्मदत्त राजा राज्य करीत असतांना बोधिसत्व ब्राम्हणकुळात जन्माला येऊन वयात आल्यानंतर तक्षशीलेला विद्या ग्रहण करून आला. येऊन वाराणसीमध्ये सर्व दिशांचा प्रमुख आचार्य बनला. एका ब्राम्हणाला चार मुली होत्या. त्या चारांची (पति म्हणून) प्रार्थना करीत होत्या. त्या (मुली) कोणाला द्याव्यात हे त्या ब्राम्हणाला समजत नव्हते. आचार्यांना विचारून देण्यास योग्य असणारालाच मी मुलगी देईन असा विचार करून त्याच्या जवळ गेला, जाऊन त्याला विचारून त्या अर्थांची गाथा म्हटली -

''शारीरिक सौंदर्याने युक्त असणाऱ्या, वयाने मोठ्या असणाऱ्या श्रेष्ठ जातीच्या असणाऱ्या (उच्चकुलोत्पन्न) आणि शील संपन्न असणाऱ्या ह्यापैकी कोणाला मुलगी द्यावी ? ह्या संबंधी हे ब्राम्हण, मी आपणास विचारतो.''

हे ऐकून आचार्यांनी म्हटले - ''सौंदर्यसंपन्न असून देखील आचरण वाईट असल्यास ते निंदनीय असते, म्हणून ते योग्य नाही. आम्हाला शीलवानच आवडतो. असा विचार व्यक्त करताच दुसरी गाथा म्हटली. ''शरीर संपत्तीचे देखील एक वैशिष्ट्य असते. वयाने ज्येष्ठ व्यक्ती नमस्कारास पात्र आहेत. चांगल्या कुळात वा जातीमध्ये देखील जन्माचे वैशिष्ट्य आहे तरी पण आम्हास सदाचारीच आवडतो.''

ब्राम्हणाने त्याचे वचन ऐकून सदाचाराने युक्त असणाऱ्यांनाच आपल्या मुली दिल्या.

पराभवसुत्त

आर्यांचा पराभव कोणत्या कारणांनी होऊ शकतो हे या सुत्तामध्ये वर्णन केले आहे. परंतु शहाण्या व तत्त्वज्ञान संपन्न आर्याला पराभवाची कारणे जाणता येतात. ती कारणे जाणून तो कल्याणप्रद लोकास प्राप्त होतो. या जगात माणसाला पराभूत करणारी अकरा कारणे भगवान बुद्धाने समजावून सांगितली आहेत.

या सुत्तामध्ये भगवान बुद्ध श्रावस्तीला जेतवनात अनाथपिंडीकाच्या बागेत विहार करीत असतांना एके रात्री एक सुंदर तेजस्वी देवता (कुसल पुरुष) जेतवनात आली. तिथे येऊन तिने संपूर्ण जेतवन प्रकाशित केले व भगवानाजवळ येऊन वन्दन करून एका बाजुला उभी राहून भगवानाला तिने प्रश्न विचारला की, ''पराभूत पुरुष कोणता? तो कसा ओळखावा? व पराभवाची कारणे कोणती?''

त्यावर भगवानाने ११ कारणे सांगितली व पराभूत पुरुष ओळखणे फार सोपे आहे असे सांगितले. कारण भरभराटीला आलेला माणूस धर्म परायण असतो व पराभव पावणारा धर्मद्वेष्टा असतो. त्याला खल व दृष्ट माणसे आवडतात, सज्जनाविषयी प्रेम नसते, आणि खलांचा धर्म त्यांना आवडतो. तो निद्रावश असतो, सभाप्रिय, निष्क्रीय, आळशी, प्रयत्न न करणारा, क्रोधाविष्ट होणारा असतो. तो समर्थ असला तरी वृद्ध माता-पित्यांचा सांभाळ करीत नाही. तो श्रमणबाह्मणाला व कोण्या गरिबाला खोटे बोलून फसवितो, धनधान्याने समृद्ध असलेला तो एकटाच गोडगोड अन्न खातो. तो कुल गोत्र व धनाच्या गर्वाने फुगून तो आप्तांची अवहेलना करतो, तो परदारागमन करणारा, दारूबाज, जुगारी, स्त्रीव्यसनी असतो. तो वयस्कर असून अगदी लहान मुलीशी लग्न करतो व तिची ईर्षा करीत राहतो. त्यामुळे त्याला झोपही येत नाही. व्यसनी व उधळ्या स्त्रीला अथवा पुरुषाला तो अधिकारपद देतो. गरीब, क्षत्रीय कुलोत्पन्न असून मोठी हाव करून इहलोकी तो राज्य प्राप्तीची इच्छा करतो. ही पराभवाची लक्षणे होत हे भगवानाने देवतेला सांगितले व ह्यांचा त्याग केला तर मनुष्याची भरभराट होते व तो सर्वतोपरी यशस्वी होतो.

धम्मदेसना

एकदा भगवंतांनी त्यांच्या शिष्यांना विचारले, 'आपण रागात असतांना जोरात ओरडतो किंवा कोणाशी भांडण झाले असल्यास आपोआप आपला आवाज वाढतो, असे कां ?'

सर्व शिष्य विचार करू लागले. एका शिष्याने उत्तर दिले, 'रागावलेले असतांना आपण स्वता:वरचे नियंत्रण हरवून बसतो आणि म्हणूनच कदाचित ओरडून बोलतो.'

यावर तथागत म्हणाले, ''पण ज्या व्यक्तीवर आपण रागावलेले असतो ती समोरच असते तरी सुद्धा आपण ओरडतो. जरी सौम्य आणि मृदु आवाजात बोलणे शक्य असले तरी देखील रागात आपण चढ्या आवाजातच बोलतो.''

यावर सर्व शिष्यांनी विचार केला आणि आपआपल्या परीने उत्तर देण्याचा प्रयत्न केला. मात्र कोणत्याच उत्तराने तथागतांचे समाधान झाले नाही.

शेवटी तथागतांनी स्वताच उत्तर दिले, ते म्हणाले, 'जेव्हा दोन व्यक्ती एकमेकांवर रागावलेल्या असतात तेव्हा त्यांच्या मनामध्ये अंतर वाढलेले असते आणि हेच अंतर भरून काढण्याकरिता ते चढ्या आवाजात बोलतात.'

''आता मला सांगा की, जेव्हा दोन व्यक्ती परस्परांच्या प्रेमात असतात तेव्हा अतिशय हळू आणि शांतपणे बोलतात, असे कां ?''

असा प्रश्न विचारून मग स्वताच उत्तर देत ते म्हणाले, ''कारण त्यांची मनं जवळ आलेली असतात. दोन मनातील अंतर कमी झालेले असते आणि जसजसे दोन्ही मनात प्रेम वाढू लागते तसतसे त्यांच्यातील संवाद इतका सुलभ होऊन जातो की, सर्वच गोष्टी बोलण्याची देखील आवश्यकताच भासत नाही. फक्त नजरेतूनच किंवा देहबोलीतूनच ते आपल्या साथीदाराला काय म्हणायचे आहे ते ओळखतात.''

शिकवण : परस्परात वादविवाद आणि भांडणतंटे होतच राहतात मात्र कितीही वादविवाद असला तरी मना-मनातील अंतर वाढू देऊ नका. तसे होऊ दिल्यास दोन व्यक्तीमधील दरी इतकी मोठी होईल की पुन्हा ती मिटविणे कधीच शक्य होणार नाही.

-सुत्तपिटक

शिविराज चरिया

जेव्हा मी अरिष्ट नावाच्या नगरीमध्ये शिवि नावाचा क्षत्रिय राजा होतो तेव्हा मी उत्तम राजप्रासादावर बसून अशाप्रकारे विचार केला. ।।१।।

जे काही मानवी दान आहे ते माझ्याकडून दिले गेले नाही असे नाही. जो कोणी मला डोळा मागेल, त्याला मी अविचलित होऊन देईन.।।२।।

(हा) माझा संकल्प जाणून देवांचा राजा इंद्र देवपरिषदेत बसला असता असे बोलला. ।।३।।

महाशक्तिशाली शिविराजा उत्तम राजप्रासादावर बसला असता व विविध दानांचा विचार करीत असता आपणास देता येणार नाही असे दान त्याला दिसतच नाही. ।।४।।

हे सत्य आहे की, असत्य आहे ह्याची मी परीक्षा घेतो. मला त्या मनाचा ठाव घेता येईपर्यंत थोडा वेळ थांबा. ।।५।।

थरथर कापणारा, पांढऱ्या केसांचा शरीरावर सुरकुत्या पडलेला, म्हातारपणाने ग्रस्त अशा आंधळ्याचे रूप धारण करून राजाकडे आला. ।।६।।

तेव्हा तो परिश्रमपूर्वक डावा आणि उजवा हात जोडून व डोक्यावर अंजली धारण करून असे म्हणाला, ।।७।।

'हे धार्मिक! राष्ट्रवर्धन महाराज! मी आपणास याचना करतो. आपली दानाच्या आवडीसंबंधाची कीर्ती देव व मनुष्य यामध्ये पसरली आहे.' ।।८।।

माझे दोन्ही डोळे आंधळे आणि निकामी झाले आहेत मला एक डोळा दे आणि तू सुद्धा एकाने काम भागव. ।।९।।

मी त्याचे वचन ऐकून हर्षित व पुलकित मनाने हात जोडून आनन्दाने हे वचन म्हटले -- ।।१०।।

''आताच मी विचार करून राजप्रासादावरून येथे आलो आहे. तू माझे चित्त (मन) जाणून माझे डोळे मागण्याकरिता आला आहेस.''

अहो माझ्या मनातील विचार सिद्ध झाला आहे ! संकल्प परिपूर्ण झाला आहे ! पूर्वी (कधीही) न दिलेले श्रेष्ठ दान मी आज याचकाला देईन. ।।१२।।

हे (वैद्यराज) * शिवका ये! उठ, उशीर करू नकोस, विचलित होऊ नकोस, माझे दोन्ही डोळे उपटून काढून याचकाला दे. ।।१३।।

तेव्हा माझ्या आज्ञेचे पालन करणाऱ्या शिवकाने मी आग्रह केल्यामुळे झाडाच्या फळाप्रमाणे (माझे डोळे) काढून याचकाला दिले. ।।१४।।

मी दान देण्याच्या तयारीत असताना, देत असताना अथवा दिल्यावर बोधिच्याच कारणाने माझे चित्त विचलित झाले नाही. ।।१५।।

मला दोन्ही डोळ्यांबद्दल द्वेष नव्हता अथवा मी स्वत:देखील स्वत:च्या द्वेष करीत नव्हतो. मला सर्वज्ञता प्रिय होती त्यामुळेच मी डोळे दान दिले. ।।१६।।

- चरियापिटक

मन: शांती
– संत एकनाथांची एक बोध कथा

एकदा संत एकनाथांना कोणी दोन प्रश्न विचारले एक त्याच्या स्वत:च्या भविष्याबद्दल आणि दुसरा एकनाथ स्वभावाने एवढे शांत आणि आणि निर्द्वेषी कसे राहू शकतात याच्याबद्दल.

एकनाथ हसले आणि केव्हातरी याची उत्तरे देईन, म्हणून त्यांनी सांगितले.

काही दिवसांनी, एकनाथांची त्या गृहस्थाशी भेट झाली. तेव्हा त्याला बाजूला नेऊन एकनाथ म्हणाले, ''तुझ्या पहिल्या प्रश्नाचे उत्तर देण्याची वेळ आली आहे, कारण,दुर्दैवाने, तू आता आठ दिवसांच्या आत मरणार आहेस.''

तो गृहस्थ सुन्न झाला, गोठला! एकनाथ समोरून निघून गेले, तेव्हा तो बधीर मनाने परतला.

जगलो तर एकनाथांसारख्या संतांच्या सदिच्छेने जगू, अशी त्याला भावना निर्माण झाली.

ती त्याने सार्थ केली. आयुष्यातले आठ दिवस पूर्ण करून नवव्या दिवशी, एकनाथांच्या दर्शनाला तो गेला. एकनाथांना हात जोडून म्हणाला, ''तुमच्या कृपेने वाचलो.''

एकनाथ मान डोलवित म्हणाले, ''आता मी तुम्हाला दुसऱ्या प्रश्नाचे उत्तर देणार आहे. गेले आठ दिवस तुम्ही कसे वागलात? इतरांच्यावर किती रागावलात ?''

तो गृहस्थ उत्साहाने म्हणाला, ''कसला हो रागावतो? अगदी छान,

शांत आठ दिवस गेले. शांत म्हणाजे, मरणाच्या भितीने बेचैन होतो, पण दुसऱ्यावर रागावण्यासाठी ती बेचैनी नव्हती. घरात बायकोशी कधी भांडलो नाही. मुलांना मारले नाही. वाटायचे की, आता अखेरचे आठ दिवस उरले. बायका-मुले पुन्हा दिसणार नाहीत; त्यांना का दुखवावे? अहो, शेजाऱ्याचे जमिनीवरून चार पिढ्यांचे भांडण होते. त्याला स्वतःच्या हाताने हवा तो तुकडा तोडून दिला. देणे होते ते देऊन टाकले. ज्यांच्याकडून येणे होते, त्यांच्यापैकी जे गरीब होते, त्यांचे येणे सोडून दिले. काही पैसे गमावले, पण शांती कमावली. खूप खूप शांत असे आठ दिवस त्या दृष्टीने गेले.''

एकनाथ समोरच्या माणसाच्या पाठीवर हात थोपटून म्हणाले, ''हे तुझ्या दुसऱ्या प्रश्नाचे उत्तर. आठ दिवसांत जग सोडून जायचे आहे, अशा कल्पनेने मी सदाच वावरतो. म्हणून मी शांत वाटतो.''

अंधारात कसा चढणार डोंगर ?

तरुण शेतकरी डोंगरावरच्या देवाच्या दर्शनासाठी निघाला होता. डोंगर त्याच्या खेड्यापासून तसा फार लांब नव्हता. पण शेतीच्या कामामुळे अनेक दिवस जाऊजाऊ म्हणत जाणं काही झालं नव्हतं. दिवसभराचं काम संपलं. त्यानं भाकरीचं गाठोडं बांधून घेतलं. एका मित्राकडून कंदील उसना घेऊन निघाला डोंगराच्या दिशेने....

रात्रीच गावाची सीमा ओलांडली. अमावास्येची रात्र, अगदी गडद अंधार होता. तो डोंगराच्या पायथ्याशी जाऊन थांबला. हातात कंदील होता खरा, पण त्याचा प्रकाश तो किती ? जेमतेम दहा पावले जाता येईल एवढाच! अशा परिस्थितीत तो मोठा डोंगर कसा बरं चढायचा? किऽर्रऽऽर्र अंधारात एवढासा कंदील घेऊन चढणे वेडेपणाचे होईल, असा विचार त्याने केला आणि मिणमिणणारा कंदील घेऊन उजाडायची वाट पाहात तो पायथ्याला बसून राहिला. बसून कंटाळा आला तसा उशाचा एक दगड घेऊन मुंडासं पांघरून आभाळातल्या चांदण्या पाहत तो पडून राहिला. तांबडं फुटायची वाट पाहू लागला. कुणाच्या तरी पावलांची चाहूल लागली तसा शेतकरी चट्शिरी उठून बसला आणि अंधाराकडे डोळे ताणून पाहू लागला...

इतक्या अवेळी या आडवाटेला कोण बरं आलं? तेवढ्यात कानावर आवाज आला.

'राम राम पाव्हनं का असं निजलात?' म्हातारा आवाज होता. शेतकऱ्याने पाहिलं तो एक म्हातारा त्याच्याच दिशेने येत होता. त्याच्या हातात लहानसा कंदील होता.

शेतकरी म्हणाला, ''राम राम बाबा, उजाडायची वाट पाहतोय. म्हणजे डोंगर चढून दर्शनाला देवळात जाईन.''

म्हातारा हसला... म्हणाला, ''अरे जर डोंगर चढायचं ठरवलं आहेस तर मग उजाडायची वाट का पाहतोस. कंदील तर आहे की तुझ्यापाशी. मग कशासाठी इथं पायथ्यालाच आडून बसला आहेस?''

''एवढ्या अंधारात कसा चढायचा डोंगर. काय वेड लागलंय का तुम्हाला आणि हा कंदील केवढासा! अहो, कसंबंस आठदहा पावलं पुढचं फक्त दिसतंय याच्या प्रकाशात.'' तरुण शेतकरी म्हणाला म्हातारा हसायला लागला आणि म्हणाला, ''अरे तू पहिली दहा पावलं तरी टाक. जितकं तुला दिसेल तेवढा तरी पुढे जा. जसा चालायला लागशील तसे तुला पुढचे पुढचे दिसायला लागेल. फक्त एक पाऊल टाकण्याएवढा जरी प्रकाश असला तरी त्या एकेका पावलाने पृथ्वीला प्रदक्षिणा घालता येते.''

म्हाताऱ्याचं बोलणं तरुण शेतकऱ्याला पटलं. तो उठला आणि चालायला लागला आणि कंदिलाच्या प्रकाशात सूर्योदयापूर्वी देवळात जाऊन पोहोचलासुद्धा! वाट पाहत बसून कशाला राहायचं?

जो थांबतो तो संपतो. जो चालतो तो ध्येय गाठतो, कारण चालणाऱ्यालाच पुढचा रस्ता दिसतो. लक्षात असूद्याकी किमान दहा पावले चालण्याइतके शहाणपण आणि प्रकाश प्रत्येकाजवळ असतो आणि तो पुरेसा असतो.

विजयी बेडूक

खूप वर्षी पूर्वी एका सरोवरामध्ये खूप बेडूक राहत होते. सरोवराच्या मधोमध धातूचा एक खांब होता तो खांब ते सरोवर बनवणाऱ्या राजाने बांधला होता. खांब खूप मोठा आणि चिकट होता.

एक दिवस बेडकांच्या मनात आले की आपण एक प्रतियोगिता भरवूया. प्रतियोगितेत भाग घेणाऱ्या बेडकाला सरोवराच्या मधोमध असणाऱ्या धातूच्या चिकट खांबावर चढावे लागणार होते आणि जो बेडूक पहिला चढेल तो विजेता घोषित केला जाईल असे ठरले.

प्रतियोगितेचा दिवस आला, चारी दिशांमध्ये खूप गर्दी जमली. आसपासच्या सर्व परिसरातून खूप बेडूक आलेत. परिसरात प्रतियोगितेचा एकच आवाज घुमू लागला.

प्रतियोगिता सुरू झाली...

परंतु खांबाला पाहून कोणत्याही बेडकाला असे वाटत नव्हते की प्रतियोगितेतील कोणताही बेडूक या खांबावर चढू शकेल...

आजूबाजूला असेच ऐकू येत होते.

''अरे हे खूप अवगड आहे.''

''ही प्रतियोगिता आपण कशी जिंकणार''

''जिंकण्याची शक्यताच नाही, इतक्या चिकट खांबावर कसे चढणार''

जो कोणी बेडूक वर चढण्याचा प्रयत्न करत होता तो अपयशी होत होता.

थोडा वर चढून तो परत खाली पडत होता,

प्रतियोगितेतील खूप बेडूक पुन्हापुन्हा प्रयत्न करत होते...

परंतु प्रतियोगितेतील बेडकांच्या तोंडून एकच आवाज येत होता, ''हे होऊ शकत नाही, हे अशक्य आहे.''आणि प्रतियोगितेतील जे उत्साही बेडूक होते ते हे एकूण हताश झाले आणि त्यांनी आपला प्रयत्न सोडून दिला.परंतु प्रातियोगितील त्या मोठ्या बेडकांच्यामध्ये एक लहान बेडूक होता, जो सारखा-सारखा वर चढण्याचा पर्यंत करत होता आणि खाली पडत होता, परंतु परत त्याच उमेदीने उटून वर चढत-चढत तो खांब्याच्या वर पोहचला आणि प्रतियोगिता जिंकला.

यांच्या विजयावर बाकीच्या बेडकांना खूप आश्चर्य वाटले, सर्व बेडूक त्या विजेत्या बेडकाला घेऊन उभे राहिले आणि विचारू लागले, तू हे असंभव काम कसे संभव केले, भले तुला आपले लक्ष्य प्राप्त करण्याची शक्ती कोटून मिळाली, जरा आम्हाला पण सांग की तू हा विजय कसा मिळवलास ?

तेव्हा मागून एक आवाज आला... ''त्याला काय विचारताय, तो तर बहिरा आहे.''

मित्रांनों, एक गोष्ट नेहमी लक्षात ठेवा, आपल्यामध्ये आपले लक्ष्य प्राप्त करण्याची काबिलियत असते, पण आपण आपल्या आजूबाजूच्या नकारात्मक वातावरणामुळे आपल्याला दुसऱ्याच्या तुलनेत कमी लेखतो आणि आपण जी मोठी-मोठी स्वप्न पाहतो ती पूर्ण न करताच जीवन जगतो. खरतर आपल्याला आवश्यकता या गोष्टीची पाहिजे की आपल्याला कमकुवत करणाऱ्या हर एक आवाजा प्रती बहिरे आणि हर एक दृश्या प्रती आंधळे राहिले पाहिजे आणि मग बघा आपल्याला विजयी होण्यापासून कोण रोखू शकत नाही.

बौद्ध धम्मात नैतिकतेचे महत्व

मनुष्य एक समाजशील प्राणी आहे. माणसा माणसात व्यवहार करतांना एका पासून दुसऱ्याला हानी होणार नाही असे वर्तन प्रत्येक मनुष्याने केले पाहिजे. आपल्या आचरणा पासून स्वतःला पण हानी होणार नाही असेही आचरण प्रत्येक मनुष्याने केले पाहिजे. तसेच आपल्या आचरणा पासून दुसऱ्यांना पण हानी होणार नाही असेही आचरण प्रत्येक माणसाने केले पाहिजे. अशा प्रकारचे हानिरहित आचरण म्हणजेच सदाचार, नैतिकता, शील, विनय, सद्वर्तन, चांगले कर्म असे विविध नाव देता येतात. बौध्द धर्मात अशा नियमांनाच शील, विनय, सदाचार किंवा नैतिकता म्हणतात. बौद्ध धर्माची आधारशिलाच मुख्यता शिलांवर, नैतिकतेवर आधारलेली आहे. म्हणुनच डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी आपल्या "बुद्ध आणि त्यांचा धम्म" ह्या ग्रंथात म्हटले आहे की, "नैतिकता हेच धम्म आहे आणि धम्म हेच नैतिकता आहे."

दुखाचे निवारण करण्यात नैतिकतेचे महत्व--

जर आपण शिल सदाचाराचे आचरण केले नाही, वाईट वागत राहिले तर त्यापासुन आपल्यालाच हानी होते, दुख होते आणि आपले आचरण वाईट जास्त असले तर त्यापासुन दुसऱ्यांना पण त्रास होतो, दुख होते, त्यांचे नुकसान होतात. त्यामुळे एकंदर समाजातच दुख निर्माण होतो. समाजात विषमता, असंतोष, वर्ग संघर्ष निर्माण होतो. गौतम बुध्दानी अशाप्रकारे उत्पन्न होणाऱ्या दुखांचे मूळ कारण शोधून काढले आणि त्यांच्या निवारण्याचा मार्ग 'अष्टांगिक मार्ग' शोधून काढला. यालाच

बौद्ध धम्म म्हणतात, बौद्धधर्म पण म्हणतात. दुखाचे मूळ कारण तृष्णा आणि तृष्णा निवारण्याचा मार्ग म्हणजे 'अष्टांगिक मार्ग.' अष्टांगिक मार्ग म्हणजेच नैतिकतेचे आचरण. बुध्दांनी तत्व व सिध्दांत रूपात याचे वर्गीकरण केले आहेत- 1. पंचशील 2. अष्टांगिक मार्ग 3. दहा पारमिता.

पंचशील-- 1. प्राणी हिंसा करू नये 2. चोरी करू नये 3. व्यभिचार करू नये 4. असत्य बोलू नये 5. दारू नशा मादक पदार्थांचा सेवन करू नये.

अष्टांगिक मार्ग-- 1. सम्यक दृष्टि 2. सम्यक संकल्प 3. सम्यक वाणी 4. सम्यक कर्मांत 5. सम्यक आजिविका 6. सम्यक व्यायाम 7. सम्यक स्मृति 8. सम्यक समाधि.

दहा पारमिता-- 1. शील 2. दान 3. उपेक्षा 4. नेखमा 5. विर्य 6. क्षांति 7. सत्य 8. अधिष्ठान 9. करूणा 10. मैत्री.

भ्रष्टाचार निर्मुलना करिता नैतिकतेचे महत्व--

भारताचा इतिहास साक्षी आहे कि जेंव्हा जेंव्हा बौद्धधर्म देशात कमजोर झाला तेंव्हा तेंव्हा देशात भ्रष्टाचारांत वाढ होत गेली. वास्तवात बौद्धधर्मातिल सर्वोत्तम मूल्यें प्रज्ञा, शील, मैत्री, प्रेम, करूणा हे तत्व मनुष्याला भ्रष्टाचार करण्यापासून रोकतात. याचे कारण असे की ह्या मूल्यांत आणि सदाचारात नैतिकतेत उच्च कोटिंचा सकारात्मक संबंध आहे.

आज भारतात बौद्धधर्म हळू हळू वाढत आहे. परंतु संपूर्ण देशांत व्यापक स्वरूपांत जास्तीत जास्त लोकांत पसरलेला नाही. त्यामुळे भ्रष्टाचाराला थांबवण्याकरीता बौद्धधर्माची प्रभावी भूमिका दिसून येत नाही. याचे कारण असे की बुध्द विरोधकांची व भ्रष्टाचार पसरविणाऱ्यांची

संख्या भारतात खूपच जास्त आहे. म्हणून भारतात भ्रष्टाचार निवारण्या करीता बौद्ध धर्मातिल नैतिकता व सदाचाराची फारच गरज आहे. संकुचित अर्थाने भ्रष्टाचाराचा अर्थ अनैतिकताच आहे आणि गैरकानुनी मार्गाने चल-अचल संपत्ति एकत्रित करने हाच आहे.

त्रिपिटक बौद्ध ग्रंथातील महत्वपुर्ण ग्रंथ सुत्तनिपात मधिल पराभव सूत्तात जे अमंगल, अनैतिक व अशुभ कर्म सांगितले आहेत ते सर्व वाईट कर्म भ्रष्टाचारांत व अन्यायात वाढ करतात. अवैध मार्गाने धन संचय करने, दारू पिने, जुआ- सट्टा खेलने, असत्य बोलने हे सर्व भ्रष्टाचाराच्या वर्गात येतात. हे सर्व अकुशल कर्म आहेत, अनैतिकतेचे कर्म आहेत जे न करण्यास बुध्दाने सांगितले आहे.

धार्मिक क्षेत्रात प्रज्ञाविहिन रूढीप्रथा, अंधश्रध्दा, पाखण्ड, कर्मकाण्ड हे सर्व कर्म भ्रष्टाचाराच्या परिघात येतात. अशाप्रकारचे सर्व अनैतिक कर्म दूर करण्याकरिता बुध्दानी सूत्तनिपात मध्येच "महामंगल सूत्तात" विविध नैतिक कर्म करण्या करीता सांगितले आहे.

भारतामध्ये बुध्दांनी पराभव सूत्तात व महामंगल सूत्तात सांगितल्या प्रमाणे नैतिकतेचे आचरण केले जात नसल्यामुळे ह्या देशात सर्वत्र हत्याये, बलात्कार, चोरी डकैती, नशाखोरी, अपहरण, भ्रष्टाचारां सारखे विविध अपराध गुन्हे जोमाने वाढतच आहेत. याचे प्रमुख कारण म्हणजे राजनीतिक शासन प्रशासनाच्या क्षेत्रात नैतिकतेचे सदाचाराचे व्यापक स्वरुपात पूर्णपणे पालन होत नाही. आणि नैतिकतेच्या आचरणाचीच या देशाला नितांत आवश्यकता आहे. बौध्दधर्मातील नैतिकतेचे पालन देशांतील संपूर्ण जनतेने पूर्णपणे केले तर भारत पून्हा महान देश बनू शकतो.

धर्मनिरपेक्ष नैतिकतेची आवश्यकता--

विविध धर्मपंथ आस्था विश्वासांनी विभागलेल्या देशांत धर्मनिरपेक्ष नैतिकतेची अत्यंत आवश्यकता आहे. धार्मिक श्रध्दा, आस्था, विश्वास फक्त मनुष्यांमध्येच असते. धार्मिक श्रध्दांमध्ये नैतिकतेला महत्व दिले नाही तर ते संपूर्ण समाजाला व देशाला पण घातक ठरते. शोषण, भ्रष्टाचार, धोकाधड़ी, झूठ फरेब, धौंसबाजी, डरावने, धमकावणे, देशांत भितीचे वातावरण निर्माण करने हे सर्व वाईट कृत्य नैतिकतेच्या तत्व सिध्दांतांना महत्व न दिल्यामुळे निर्माण होतात. समता, बंधुता, प्रेम, करूणा, कल्याण, न्यायाच्या गोष्टी चर्चा, प्रचार आम्ही सर्वच करीत असतो. परंतु प्रत्यक्षात आपल्या देशातील लोकं, शासक प्रशासक, नेते तसे वागत नाहीत. त्यामुळे समाजात अन्याय, विषमता व असंतोष अत्यधिक प्रमाणात वाढतच जाते. आपण आस्तिक असु किंवा नास्तिक असू नैतिकतेच्या सिध्दांतावर व त्याचे काटेकोर पणे पालन करण्यावर गंभीरतेने विचार चर्चा करायला पाहिजे. नैतिक तत्वांची शिक्षा, प्रशिक्षण, शिक्षण समाजात व शाळा कालेजात दिले गेले पाहिजे. सर्व धर्म पंथांनी नैतिक मूल्यांची शिक्षा समाजाला दिली पाहिजे. त्याशिवाय देशातुन अन्याय, भ्रष्टाचार, विषमता नष्ट होणार नाही.

स्वास्थ्य संवर्धनात नैतिकतेचे महत्व--

शारीरीक स्वास्थ्य संबंधात स्वच्छते विषयी, योगव्यायामाची शिक्षा दिली जाते. परंतु मानसिक स्वास्थ्य संबंधात, मानसिक स्वच्छते विषयी शिक्षा कधीही दिली जात नाही. "मन स्वस्थ तर शरीर स्वस्थ आणि शरीर स्वस्थ तर मन स्वस्थ" असते. म्हणून मनाच्या स्वच्छते

विषयी शिक्षण समाजाला देत राहिले पाहिजे. नैतिकता व सदाचार मनाला स्वच्छ व स्वस्थ ठेवण्याचे काम करते हे सर्वांना माहित असायलाच पाहिजे. मन मस्तिष्क स्वच्छ व पवित्र ठेवण्याची शक्ति पण नैतिकतेच्या आचरणात असते. एक स्वस्थ चित्त, प्रसन्न चित्त, उत्साही चित्त संपूर्ण परिवाराला पण खुशहाल व सुखी बनवितो. आपली चित्तवृत्ती कशी स्वच्छ व स्वस्थ ठेवावी याचे पण मूल्य शिक्षण समाजाला दिले पाहिजे.

चिकित्सा वैज्ञानिकांचे म्हणणे आहे कि, वारंवार क्रोध गुस्सा, भिती, द्वेष, लोभलालच ठेवण्याचे भावना चित्त हे रोगांविरूद्ध लढण्याची रोगप्रतिरोधक क्षमता नस्ट करते. तर निर्मल करूणामय, मैत्रीपूर्ण प्रशन्न चित्त शरीराला स्वस्थ ठेवण्यात मदतगार ठरते व रोगप्रतिकारक क्षमतेत वाढ करते. म्हणजे जे व्यक्ति मानसिक रूपाने स्वस्थ व सुखी राहतात ते शरीराने पण स्वस्थ राहण्यात लाभान्वित होतात. चित्ताची शांति शुध्दता, मनाची पवित्रता स्वास्थ्याच्या दृष्टिने महत्वपूर्ण असते. म्हणूनच बुद्धाने सांगितले आहे- "आरोग्य परम लाभ". नैतिक आचरणाने मन चित्त पवित्र स्वस्थ ठेवून आशावादी दृष्टिकोण शरीराला स्वस्थ ठेवण्यात मदतगार होतो. म्हणून नैतिकतावादी प्रज्ञावादी दृष्टिकोण मनुष्याच्या विकासाचा व सुखी जीवन जगण्याचा महत्वपूर्ण आधार आहे.

जातिभेद नष्ट करण्यात नैतिकतेचे महत्व--

जातिप्रथेच्या उचनीच भावनेमुळे एकदा जर मनुष्याच्या मनात, चित्तात भेदभावाच्या भावनेने प्रवेश केला तर निष्पक्ष होऊन निर्णय घेण्याची क्षमता नष्ट होऊन जाते. म्हणून जातिच्या वर्चस्वाची आसक्ति ही धर्मनिरपेक्ष भावनेच्या आड़ येऊन अनैतिकतेने वागण्यास प्रवृत्त

करते. यावरून हे सिध्द होते की जातिप्रथा, जातिभेद नष्ट करण्याकरीता नैतिक आचरणाची किती महत्वपूर्ण गरज आहे. म्हणून बुद्धांनी सांगितल्या प्रमाणे नैतिकतेचे सदाचाराचे पालन पूर्णपणे संपूर्ण जाति धर्म पंथातील लोकांनी करने नितांत आवश्यक आहे. यावरून असे म्हणता येईल की नैतिकता हेच धम्म आहे ज्याचे पालन करने हे मनुष्याच्या व देशाच्या विकासा करीता महत्वपूर्ण आहे. नैतिकता व धम्माचे सार एका गाथेमध्ये असे आहे--

सब्ब पापस्स अकरणं, कुशलस्स उपसंपदा ।
सचित्त परियो दपनं, एतेन बुध्दानु शासनं ।।

धम्म हे एक नैतिकतेचे स्त्रोत

आपलं रोजचं जगणं संघर्षानं भरलंय. हा जगण्याचा संघर्ष करत असताना आपल्या भावनांचा इतरांनी आदर केला नाही, किंवा त्यांचा अपमान केला तर आपल्याला दुःख होतं. कुणी कुणाला टाकून बोलतं, कुणी अपमानित करतं, दुस-याला आपल्याहून कमी समजतो, असमान समजतो. जातिभेद पाळतो. कुणी कुणावर कुरघोडी करतं, कुणी पुढे जात असलं तर त्याचा पाय ओढला जातो, कुणी कुणाला अडचणीत आणतं, कुणी कुणाला लुबाडतं, फसवतं. कुणी कुणाचा खून करतं, कुणी कुणाला नाडतं, गुलाम बनवतं. कुणी आपल्या बायकोवर, नव-यावर, मुलांवर, आई-वडिलांवर अथवा नातेवाईक, मित्रांवर सत्ता गाजवतं. इतकंच नाही तर कधी कधी आपणच आपले वैरी होतो. आपल्या मनासारखं नाही झालं तर आपण नाराज होतो. हे तीव्र असलं तर माणूस नैराश्यानं आत्महत्या करतो. याच्यातून माणसाच्या आयुष्यात दुःख निर्माण होतं, माणूस दुःखी होतो आणि इतरांनाही दुःखी बनवतो. मग माणसाला वाटतं, आपण सुखी झालं पाहिजे. आपलं दुःख दूर झालं पाहिजे. मग तो मार्ग शोधतो, सर्वात सोपा मार्ग म्हणजे देवाधर्माचा. आपलं दुःख दूर व्हावं यासाठी तो देवाचा धावा करतो, नवस करतो, उपवास धरतो, देवालयांचे उंबरठे झिजवतो, कर्मकांड करतो, दानधर्म करतो, अनादि काळापासून तो असं करत आलाय. पण त्याचं दुःख यामुळे नाही दूर झालं. दुःख हे सत्य आहे, असं ज्याने अवघ्या मानवजातीला त्यांच्या

घराघरात जाऊन सांगितलं, त्या सिद्धार्थ नावाच्या मानवानं आपला अनुभव, बुद्धिप्रामाण्यवाद आणि अथक परिश्रमातून दुःख दूर करण्याचा शोध लावला आणि तो नव्या आणि ख-या धर्माचा मार्ग जगाला दाखवला. त्या मार्गालाच त्यानं ' धम्म ' असं नाव दिलं.

सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स उपसंपदा
सचित्त परियोदपनं, एतं बुद्धान सासनं

म्हणजेच कोणत्याही प्रकारचं वाईट कर्म न करणं, चांगल्या कर्माचा संग्रह वाढवणं, मन सतत शुद्ध राखणं, हीच बुद्धाची शिकवण आहे. ही धम्मपदातली गाथा आहे. यात बुद्धाच्या धम्माचं सार सामावलंय.

'धम्म' म्हणजे काय ? या प्रश्नाचं उत्तर एका शब्दांत द्यायचं झालं तर या गाथेच्या आधारे असं देता येईल की, 'धम्म' म्हणजे सदाचार. म्हणजेच वर चर्चा केलेली वाईट कृत्ये माणसांनी न करणं. डॉ. बाबासाहेब आंबेडकरांनी आपल्या भगवान बुद्ध आणि त्यांच्या 'धम्म' या ग्रंथात धम्माची व्याख्या केलीय. ते म्हणतात, 'धम्म' म्हणजे सदाचरण. म्हणजेच, जीवनाच्या सर्व क्षेत्रात माणसा-माणसातले व्यवहार उचित असणं. ते म्हणतात की, माणूस जर एकटाच असला तर त्याला धम्माची आवश्यकता असणार नाही. पण जेव्हा दोन माणसं कोणत्याही संबंधानं एकत्र येतात, तेव्हा त्यांना आवडो अथवा न आवडो, 'धम्म' हा पाहिजेच. दुस-या शब्दांत सांगायचं म्हणजे समाज धम्माशिवाय असू शकतच नाही.

'धम्म' म्हणजे जर सदाचार असेल तर मग सदाचार म्हणजे तरी काय ? सदाचार म्हणजे चांगलं आचरण. या चांगल्या आचरणावरच समाजातील नितिमत्ता राखली जाते. दुःखाला दूर करण्याचा आणि सुखी होण्याचा मार्ग सापडतो, असं बुद्धांच्या उपदेशातून आपल्याला दिसतं. तथागत म्हणतात की,

माणसानं चांगलं कर्म केलं तर त्याचं फळ त्याला चांगलं मिळतं, आणि जर त्यानं वाईट कर्म केलं तर त्याला वाईट फळ मिळतं. माणसाचं सुखी होणं अथवा त्याचं दुःखी होणं, हे तथागतांनी माणसाच्या कर्मावर अवलंबून ठेवलंय. यालाच बुद्धांचा कर्मनियम म्हणतात. दुःख दूर व्हावं म्हणून आजही समाजात पूजा, कर्मकांड, प्रार्थना, पोथी अथवा ग्रंथवाचन, वेगवेगळ्या प्रकारचे विधी, उपासतापास, नवससायास, हे मार्ग अवलंबिले जातात. तथागतांनी या मार्गांचा स्पष्ट शब्दांत निषेध केलाय. माणसाचं दुःखी अथवा सुखी होणं, हे अशी कर्मकांड, पूजा, प्रार्थना करण्यावर अथवा न करण्यावर अवलंबून नसून ते सुखी होणं माणसाच्या कर्मावरच अवलंबून आहे, हेच तथागतांचं अवघ्या मानवी समाजाला सांगणं आहे. जगातली नैतिक व्यवस्था ही कर्मनियमावरच अवलंबून आहे. इतर कशावरही नाही, असं तथागतांचं म्हणणं आहे.

आता प्रश्न असा निर्माण होतो की, कर्म हे कशातून उत्पन्न होतं ? याचं उत्तर आहे, मनातून. मन हेच कर्माचा कर्ता आहे. माणसाच्या सर्व त-हेच्या प्रवृत्ती, सद्विचार, दुर्विचार, भावभावना, वितर्क, मनातूनच निर्माण होत असतात. म्हणूनच तथागतांनी मन हेच केंद्रबिंदू मानलंय. मन मुख्य आहे. याचाच अर्थ असा की, जर माणसानं आपल्या मनाला चांगलं वळण लावलं. वाईट संस्कार केले, दुर्गुणांची कास धरली तर मनात वाईट प्रवृत्ती निर्माण होतील. म्हणूनच शरीराची सत्ता ज्यांच्या हातात आहे, त्या मनाला चांगलं वळण लावण्यासाठी बुद्धांनी माणसाला सहज, सुलभ आणि खराखुरा उपाय अथवा मार्ग सांगितलाय, त्यालाच ' धम्म ' असं म्हणतात. या धम्माचं पालन केलं की माणूस सुखी होईल, असं बुद्धांनी म्हटलंय.

नितिमत्ता आणि धर्मश्रद्धा

नीतिमत्ता आणि धर्मश्रद्धा यांचा परस्परसंबंध लावायचा झाल्यास पुढील गृहीतक मांडता येईल : (1) सर्व धार्मिक माणसे नीतिमान असतात आणि सर्व अधार्मिक माणसे अनीतिमान असतात किंवा (2) सर्व गुन्हेगार अधार्मिक असतात आणि ज्या लोकांच्या नावावर एकही गुन्हा नोंदवला गेला नाही ते सर्वजण धार्मिक असतात.

वरील गृहीतक तपासून बघणं हा या लेखाचा हेतू नाही. हे गृहीतक चुकीचं आहे, हे आपण कोणताही शास्त्रीय अभ्यास न करता, आपल्या दैनंदिन सामाजिक अनुभवांमधून आणि परस्परसंवादांमधूनही सांगू शकतो. आपण आपल्या वैयक्तिक आयुष्यातसुद्धा अशा अनेक माणसांना पाहतो किंवा भेटतो, जी माणसे कोणत्या ना कोणत्या देवाची भक्त असतात; परंतु त्यांचं वर्तन मात्र भ्रष्ट असतं. पुन्हा अशी ही धार्मिक माणसं काही फक्त राजकारणी अथवा गुन्हेगारच असतात असं नाही, तर काही वेळा आपले नातेवाईक, मित्र-मैत्रिणी व आपण स्वतःसुद्धा असे असतो. त्याच वेळेस, स्वतःला अधार्मिक म्हणवणारे (नास्तिक, अज्ञेयवादी, निसर्गपूजक इ.) नैतिकदृष्ट्या खूप खंबीर आणि कोणत्याही अनैतिक कृत्यापासून लांब असलेले दिसतात. समाजात हे असं चित्र दिसत असताना, देवावर किंवा कोणत्याही उच्च शक्तीवर श्रद्धा असणं हे नैतिकतेबरोबर का जोडलं गेलं असावं? 'धार्मिक माणूसच नीतिमान असतो आणि अधार्मिक माणूस अनैतिक असतो' असं सर्वसाधारणपणं का समजलं अथवा मानलं जात असावं?

'तू काही चुकीचं केलंस की देवबाप्पा तुला शिक्षा करेल' हेच आपल्याला लहानपणापासून शिकवलं जातं. आपण कोणत्याही धर्माचे असलो तरी आपल्याला आपल्या चुकीच्या वागणुकीसाठी शिक्षा करण्याची ताकद त्या-त्या धर्मातल्या देवांकडे असते. हे सर्व आपल्या मनात ठासून बसवलं जातं अथवा नकळतपणं कोरलं जातं. याच टप्प्यापासून देव आणि नैतिक वागणूक एकमेकांशी जोडले जाऊ लागतात. याच विचारसरणीतून नंतर पुढील तर्क मांडला जातो- 'तुम्ही जर देवावर विश्वास ठेवत नसाल, तर तुम्ही अनैतिक व्यक्ती आहात'.

जगभरातील लोक देव आणि नैतिकतेच्या परस्पर संबंधांबद्दल काय विचार करतात? 2014 मध्ये एक सर्वेक्षण करण्यात आलं. Worldwide, Many See Belief in God as Essential to Morality (Richer Nations are Exception) असं शीर्षक असलेल्या या सर्वेक्षणातून काही interesting माहिती आपल्यासमोर येते. जगभरातील 39 राष्ट्रांमध्ये Pew Research Center नं घेतलेल्या सर्वेक्षणातून असं दिसून येतं की खूप लोक असा विचार करतात की 'नीतिमान व्यक्ती होण्यासाठी किंवा असण्यासाठी देवावर विश्वास ठेवणं गरजेचं आहे.' या सर्वेक्षणाचं म्हणणं असं आहे की, हा दृष्टिकोन श्रीमंत राष्ट्रांपेक्षा गरीब राष्ट्रांमध्ये जास्त दिसून येतो. 39 राष्ट्रांपैकी 22 राष्ट्रांमध्ये मोठ्या प्रमाणावर लोक असं म्हणतात की, नैतिकता आणि चांगली मूल्यं असण्यासाठी देवावर विश्वास असणं गरजेचं आहे. आफ्रिका आणि मध्य आशियात ही परिस्थिती जास्त आहे. आफ्रिकेतील ज्या एकूण सहा राष्ट्रांमध्ये सर्वेक्षण करण्यात आलं, त्या सहा राष्ट्रांपैकी किमान तीन-चतुर्थांश राष्ट्रं असं म्हणतात की, 'नैतिकतेसाठी देवाची आवश्यकता आहे'.

मध्य आशियातील- इजिप्त, जॉर्डन, टर्की, पॅलेस्टिनियन प्रदेश, ट्युनिशिया आणि लेबनन इत्यादी राष्ट्रांमध्येदेखील दहा जणांपैकी सातजण हेच म्हणतात. फक्त इस्रायलमध्येच बरेच लोक हे मानतात की, 'चांगला माणूस असण्यासाठी, देवावर विश्वास असणं गरजेचं नाही'. लॅटिन अमेरिका व आशिया पॅसिफिकमधील लोकसुद्धा नैतिकता आणि धार्मिक श्रद्धांचा परस्परसंबंध जोडतात. उदाहरणार्थ- इंडोनेशिया, पाकिस्तान, फिलिपिन्स आणि मलेशियामध्ये लोक एकमुखाने विचार करतात की, 'देवावर विश्वास असेल तरच चांगली मूल्यं असू शकतात'. एल साल्वाडोर, ब्राझील, बोलिव्हिया आणि व्हेनेझुएलातील लोकही हे मान्य करतात. परंतु, बरेचसे ऑस्ट्रेलियन लोक मात्र याविरुद्ध विचार करतात- 'नैतिक असण्यासाठी धार्मिक किंवा आस्तिक असणं गरजेचं नाही'. लॅटिन अमेरिका, चिली आणि अर्जेंटिना या देशांतील लोकांचे या बाबतीत मतभेद आहेत. उत्तर अमेरिका आणि युरोपमध्ये खूप लोक हे मान्य करतात की, 'अधार्मिक असूनही नैतिक असणं शक्य आहे'. जगाच्या या भागातील प्रत्येक राष्ट्रातील साधारणपणे निम्मी लोकसंख्या याच विचाराची आहे. फ्रान्स, स्पेन, चेक-रिपब्लिक आणि ब्रिटनमध्ये तर दहा जणांपैकी आठ किंवा अधिक लोक हाच विचार करतात. अमेरिकन लोक मात्र वेगळा विचार करतात- 53 टक्के अमेरिकन म्हणतात, 'नैतिक असण्यासाठी देवावर श्रद्धा असणं गरजेचं आहे'. हे Pew research Center सर्वेक्षणाचे महत्त्वाचे निष्कर्ष आहेत. हे सर्वेक्षण 2011 ते 2013 या कालावधीत 39 राष्ट्रांमधील 36,854 लोकांमध्ये घेण्यात आलं.

'चांगली मूल्यं असण्यासाठी देवावर विश्वास असणं गरजेचं आहे' यावर श्रीमंत राष्ट्रांमधील लोक कमी भर देतात, तर गरीब राष्ट्रांमधील

लोक यावरच अधिक भर देतात, असंही या सर्वेक्षणातून दिसून आलं. अमेरिका या सर्वेक्षणाच्या निष्कर्षांच्या थोडी वेगळ्या पठडीत आहे- 'नीतिमत्तेसाठी देवावर विश्वास असणं गरजेचं आहे' असंच अमेरिकन लोक मानतात. वय आणि शिक्षण या दोन संकल्पना घेतल्या तर त्यानुसारसुद्धा काही देशांमध्ये फरक दिसून येतो- विशेषतः युरोप आणि उत्तर अमेरिकेत. 50 वर्षे अथवा अधिक वय असलेल्या अथवा महाविद्यालयीन शिक्षण न झालेल्या व्यक्ती अधिकतर नीतिमत्ता धर्माशी जोडतात. उदाहरणार्थ, ग्रीसमध्ये 62 टक्के वयस्कर लोक आणि 18 ते 29 वयोगटातले 29 टक्के लोक हेच मानतात. अमेरिकेत महाविद्यालयीन पदवीधर नसलेल्या बहुतांश व्यक्ती (59 टक्के) आणि महाविद्यालयीन पदवीधर असलेल्या दहा जणांमधील चारहून कमी व्यक्ती (37 टक्के) असं म्हणतात की, 'नीतिमान असायला धार्मिक श्रद्धा असणं गरजेचं आहे'. (http://www.pewglobal.org/2014/03/13/worldwide-many-see-belief-in-god-as-essential-to morality) हे सर्वेक्षण भारतीय समाजाबद्दल काय निष्कर्ष नोंदवतं? भारतीय लोकसंख्येच्या नमुन्यांपैकी 24 टक्के लोक असं म्हणतात, की नैतिकतेसाठी देवावर विश्वास असणं गरजेचं नाही; पण 70 टक्के लोक म्हणतात, की देवावर विश्वास असेल तरच व्यक्ती नीतिवान असते.

मूल्यशिक्षण देणे हि समाजातल्या प्रत्येक घटकाची जबाबदारी

'शिक्षण' हा शब्द उच्चारला की लगेच त्याचा संबंध शाळा, कॉलेज आणि अशाच सारख्या इतर शिक्षण संस्थांशी जोडला जातो. साहजिकच शिक्षणाच्या दर्जाची आणि विद्यार्थ्यांच्या गुणवत्तेची जबाबदारीही फक्त शिक्षण संस्थांचीच असते असे सर्रास गृहीत धरले जाते. याचे कारण आपण 'शिक्षण' या शब्दाची व्याख्या खूप संकुचित केली आहे. खरं तर शिक्षण ही संकल्पना खूप व्यापक आहे. आणि शिक्षण संस्थांनी दिलेल्या पदव्या, सर्टीफिकेट्सत्यापलीकडची आहे. जे शिकून आपले आयुष्य समृद्ध होते ते शिक्षण! म्हणून शिक्षणाचा संबंध फक्त शिक्षण संस्थांशी नाही तर समाजाच्या सर्वच घटकांशी जोडलेला आहे. शाळेतल्या शिक्षकांशिवाय, मुलांचे आईवडील, आजी- आजोबा, शेजारीपाजारी, राजकारणी, पुस्तके, टी. व्ही., इंटरनेट, सोशल मिडिया हे सगळे मुलांचे शिक्षकच आहेत. शाळेत जाण्याआधीपासून आणि शाळेतून बाहेर पडल्यावरही मुलांचे शिक्षण अव्याहत सुरूच असते.

जपानमध्ये घडलेली ही गोष्ट! काही वर्षांपूर्वी भारतातील एक प्रसिद्ध गणिततज्ज्ञ जपानच्या भेटीवर गेले असताना, तिथल्या एका शाळेला त्यांनी भेट दिली. शाळेतल्या साधारण १०-१२ वर्षांच्या मुलांशी त्यांनी संवाद साधला. त्या मुलांची बुद्धिमत्ता अजमावण्यासाठी त्यांना एक गणित सोडवायला दिले, ते साधारण असे होते - धान्याचा एक व्यापारी अमुक एका दराने धान्य विकतो आणि त्यावर ५% नफा कमवतो. समजा त्या व्यापार्याने धान्यामधे ठराविक प्रमाणात भेसळ केली आणि त्याच

दराने धान्य विकले, तर त्याच्या नफ्यामधे किती वाढ होईल? त्या गणिततज्ञाचा अंदाज होता की त्या वयाच्या मुलांना ते गणित सोडवायला अवघड जाईल. परंतु सर्वच मुलांनी झटकन कागदावर उत्तर लिहिलं. त्या मुलांनी लिहिलेले उत्तर जेव्हा तपासलं, तेव्हा सर्व मुलांनी लिहिले होते की जर तो व्यापारी धान्यामधे भेसळ करत असेल, तर तो निश्चितच तुरुंगात जाईल. त्याने नफा कमावण्याचा प्रश्नच उद्भवत नाही. एकमुखाने दिलेल्या या उत्तराने त्या गणिततज्ज्ञावर मात्र थक्क होण्याची पाळी आली. या मुलांनी त्यांच्या आजूबाजूला मेहनत करणारे शिक्षक, नेक राजकारणी आणि सरळ मार्गाने पैसा कमावणारे आईवडील पाहिले होते. त्यामुळे मुद्दाम कोणी न शिकवताच धंदा प्रामाणिकपणेच करायला पाहिजे हे शिक्षण त्यांना मिळाले होते. केवळ शालेय पुस्तकांमधून नीतिमत्तेच्या धड्यांची पोपटपंची करून प्रामाणिकपणाची मूल्ये मुलांमधे रुजवणे केवळ अशक्य आहे. भ्रष्टाचाराने बरबटलेल्या समाजात असे विद्यार्थी घडवता येतील?

आपल्या देशातले हे एक उदाहरण बघा! प्रसिद्ध शास्त्रज्ञ डॉ. जयंत नारळीकर यांचा एक अनुभव विचार करण्यासारखा आहे. काही वर्षांपूर्वी एका दुर्मीळ सूर्यग्रहणाचा योग आला होता. हे ग्रहण देशातल्या अनेक भागाबरोबरच पुण्यामधेही दिसणार होते. निसर्गाचे हे अद्भुत इतके दुर्मीळ होते की कोणाच्याही आयुष्यात ते एकदाच अनुभवता येईल. हे ग्रहण सर्वांनी विशेषत: युवकांनी पहावे, म्हणून डॉ. नारळीकरांच्या 'आयुका' या संस्थेतर्फे खूप प्रयत्न केले गेले. मोफत चष्मे वाटले, ग्रहणाच्या परिणामांची माहिती दिली. ग्रहण काळजी घेऊन बघितले तर काहीही धोका नाही असा संदेश दिला. परंतु तरीही लोकांनी घरी बसणेच पसंत केले.

पुण्यासारख्या शहरातसुद्धा त्या दिवशी रस्त्यांवर शुकशुकाट होता. उगाच विषाची परीक्षा कशाला घ्या असा विचार करून बहुसंख्य लोकांनी ग्रहण न पाहणेच पसंत केले. शाळेमधे विज्ञान विषयात उत्तम गुण मिळवणारे विद्यार्थीसुद्धा वैज्ञानिक दृष्टिकोन स्वीकारू शकत नाही. अशा समाजात शास्त्रज्ञ कसे निर्माण होतील? शास्त्रज्ञ व्हायला केवळ उत्तम शिक्षणसंस्था पुरेशा आहेत का?

असं म्हणतात की Education is to serious business to be consider only by educationist. अगदी खरंय हे. शिक्षण हे सर्वांगी आहे. ते केवळ पैसे मिळवण्याचे साधन नाही. आपले जगणे ज्यामुळे अधिक अर्थपूर्ण आणि समृद्ध होईल ते खरे शिक्षण! मनाची मशागत करणारे, प्रगल्भता वाढवणारे आणि स्वत:बरोबर दुसर्यांचा विचार करायला शिकवते ते खरे शिक्षण! म्हणूनच मुलांना शिक्षण देणे समाजातल्या प्रत्येक घटकाची जबाबदारी आहे, याचे भान आल्याशिवाय आणि समाजाची मानसिकता बदलल्याशिवाय शिक्षणाचा दर्जा सुधारण्याची स्वप्ने बघणे हे केवळ दिवास्वप्न ठरेल!

शिक्षण आणि मूल्य

रोज भरदुपारी ऑफिसच्या गाडीची वाट पाहताना एक बाई रोज दिसते. तिच्या हाताशी एक आणि पोटात एक अशी अवस्था. हाताशी असलेलं जेमतेम ३-४ वर्षांचं असेल. थोड्या दिवसात पोटातलं ही या जगात येईल.

मला एक प्रश्न रोजच पडतो तिला पाहून. कित्येक होऊ घातलेले आईवडील आपल्या येणार्या पाल्याच्या भविष्याचा किती आणि काय विचार करत असतील? स्पर्धा इतकी वाढली आहे. आजच व्हॉटसप वर कुणितरी मुंबईची कहाणी थोडक्यात मांडली होती. ते वाचून मनात आलं की ती कहाणी फक्त मुंबईची नसून भारतातल्या प्रत्येक वाढत असलेल्या शहराची आहे. जगण्यासाठी धडपड. मग एक मूल आधीच असताना दुसर्या मुलाचा विचार लोक का करत असतील?

आईवडील होणं ही प्रक्रिया फक्त शारिरिक आहे का? शारिरिक क्षमता आहे म्हणून मूलं जन्माला घालायची का? अर्थात सर्वच लग्न झालेले लोक असा विचार करतात असं नाही. पण जागरूक पालकत्व किती लोक करत असतील असा प्रश्न मला खरंच पडतो... रोजच.

आपणच खाऊनपिऊन सुखी राहण्यासाठी क्षणाक्षणाला मन मारून कसंबसं जगतोय, तिथे अजून एक मूल जन्माला घालून त्याला या जीवघेण्या स्पर्धेत आपण का ढकलतोय असा विचार त्यांच्या मनात एकदा तरी येत असेल का? आपणच आत्ता इतके भरडले जातोय, उद्या पुढे

जाऊन ही स्पर्धा आणखी जीवघेणी होईल, त्यात आपल्या पाल्याचा निभाव लागेल का? किंवा त्या स्पर्धेत बळकटपणे उतरवण्यासाठी लागणारी सामुग्री (शारिरिक्/आर्थिक्/मानसिक) आपण पुरवू शकू का? हा विचार होतो का?

रोज हात धुताना, नळ थोडावेळ जरी जास्ती सोडला गेला तरी डोक्यात येतं आपणच असा अपव्यय केला तर आपल्या पुढची पिढी काय वापरेल? तीच कथा पेट्रोलची. जागांचे भाव गगनाला भिडलेत, शिक्षण क्षेत्रात इतकी चुरस आहे. तिथे पुढची पिढी कसा टिकाव धरणार? नोकर्या नाहीत, उद्योग करायला पुरेसं आर्थिक पाठबळ आणि कुवत प्रत्येकाकडेच असेल असं नाही. आत्ता जरी दोन मुलं जन्माला घालण्याची (आर्थिक) (हो आर्थिकच, ९०% लोक आर्थिक कुवत पाहूनच मूलं जन्माला घालतात. एक जबाबदार व्यक्ती किंवा नागरिक बनवण्याची ईच्छा आणि ताकद असणारे खूप कमी आईबाप असतील.) कुवत असली तरी अजून दहा वर्षांनी बदलत्या जगात आपली कुवत तीच राहिल का याचा विचार किती आईवडील करत असतील? किंवा करतात?

पालकत्व म्हणजे फक्त जन्माला घातलेल्या मुलाला चांगलं चुंगलं खाऊ घालण किंवा सर्व भौतिक सुखं देणं इतकंच आहे का? त्याला उच्च दर्जाची मूल्य शिकवणं हे ही काम पालकांचंच ना? त्यासाठी त्यांनी स्वत: एक व्यक्ती म्हणूनही विकसित व्हायला हवं, मग व्यक्ती म्हणून विकसित होण्याबरोबरच कुटूंब, समाज आणि ओघानं देशाचा ही प्रश्न आलाच. मग लोकसंख्या आधीच इतकी वाढली आहे त्यात आपणच अजून भर घालायची? खेड्यात एक वेळ हे चित्र दिसलं तर नवल वाटायला नको, धरून चालो तिथे शिक्षणाचा अभाव आहे, पण शहरातही? जिथे 'शिकलेले'

लोक राहतात असं आपण धरून चालतो पण ते ही असं वागताना दिसले की मनात येतं शिक्षण हे फक्त पुस्तकी ज्ञान आणि पैसे मिळवण्याचं साधन झालंय.. मूल्यांशी त्याचं काही देणं घेणं राहिलं नाहिये आजकाल.

पुर्वी शिकलेली व्यक्ती म्हणजे 'शहाणी' अर्थातच सर्वार्थाने विचारी किंवा भलंबुरं समजणारी अशी व्यक्ती म्हणून समजली जायची. पण आज तसं दिसत नाहिये. शिकलेली म्हणजे फक्त मागे ढिगभर डिग्र्या मोठाले पगार आणि भरपूर भौतिक सुखं इतकंच नातं आहे शिक्षणाचं आणि आयुष्याचं.

राज्यघटनेच्या चौकटीत राहणारे मूल्यशिक्षण हवे

मानवी मूल्यांचा, नीतिमत्तेचा सार्वजनिक जीवनात होत असलेला ऱ्हास, भ्रष्टाचार हाच शिष्टाचार म्हणून स्वीकारणारे सार्वजनिक जीवन आणि या सगळ्यांचा प्रशासकीय कार्यसंस्कृतीवर होत असलेला नकारात्मक परिणाम या भारतीय लोकप्रशासनासमोर असलेल्या मुख्य समस्या आहेत. सनदी सेवेमध्ये आवश्यक असणारी मूलभूत मूल्ये आणि सनदी सेवकांमध्ये आवश्यक असणारे गुण यांचा समावेश या प्रकरणामध्ये आहे. सचोटी, प्रामाणिकपणा, तटस्थता, वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोन, समाजातील दुर्बल घटकांप्रती सेवाभावी वृती, करुणा, सहानुभूती, संयम, सेवेप्रती असलेली निष्ठा या संकल्पना समजावून घेणे आवश्यक आहे.

चांगला माणूस घडविण्याची वा घडण्याची प्रक्रिया किती सोपी वा किती अवघड आहे? या प्रश्नाच्या आधी खरं तर चांगला माणूस म्हणजे नेमकं काय, असाही प्रश्न विचारायला हवा; कारण चांगलं आणि वाईट या दोन्हीही सापेक्ष कल्पना आहेत. एखादी गोष्ट आपल्याला चांगली वाटत असेल, तर ती इतरांनाही तशीच वाटेल, असं नाही. किंवा इतरांना वाईट असा शिक्कामोर्तब केलेली बाब आपल्याला चांगली वाटू शकते. प्रत्येकांबद्दल आदर बाळगणे, कोणालाही हीन न लेखणे, मानसिक वा शारीरिक इजा न करणे, दुसऱ्यांच्या भावना जाणून घेणे, खोट्या प्रतिष्ठेला वा वरवरच्या गोष्टींना न भुलणे, षड्रिपूंवर शक्य तितका विजय मिळविणे आणि मुख्य म्हणजे कसलीही पूर्वअट न ठेवता सर्वांवर प्रेम करणे म्हणजे

चांगला माणूस होणे. ही अर्थातच अवघड अशी साधना आहे. म्हणूनच चांगला माणूस घडण्याची प्रक्रिया अखंड चालणारी आहे.

या पार्श्वभूमीवर आपल्या मूल्यांचा आणि नैतिक-अनैतिकतेचा विचार करायला हवा. नैतिकता आणि अनैतिकता याही चांगलं आणि वाईट यांप्रमाणेच सापेक्ष कल्पना आहेत. मात्र, व्यापक मानवी आणि निसर्गहिताचा विचार करून नैतिकता ठरविता येऊ शकते. या दृष्टिकोनातून आपण मूल्यांकडे आणि मूल्यशिक्षणाकडे पाहतो काय, हा प्रश्न आहे. आपल्या भोवतालचे वातावरण प्रदूषित झाले आहे. सर्व क्षेत्रांत भ्रष्टाचार बोकाळला आहे. चित्रपट आणि दूरचित्रवाणीही बाजारू बनल्या आहेत आणि सवंग प्रेम, दिखाऊ शौर्य, खोटी प्रतिष्ठा, गुन्हेगारीचे उदात्तीकरण आदींना महत्त्व दिले जात आहे. स्वतंत्रपणे विचार करण्याची क्षमता पद्धतशीर नष्ट केली जात आहे. मूल्यांचा ऱ्हास होत असल्याची तक्रार म्हणूनच वारंवार केली जाते आणि मूल्यशिक्षण देण्याची गरजही व्यक्त केली जाते. शाळांमध्ये त्यानुसार मूल्यशिक्षणही दिले जाते.

शिक्षण आणि जीवन यांचं अतिशय जवळचं नातं आहे. जीवनातून शिक्षण घडत असतं आणि शिक्षणाद्वारे जीवनाला आकार येत असतो. पारंपरिक शिक्षण पद्धतीद्वारे मूल्यांचाही धडा मिळाला तर ते चांगलेच आहे; परंतु शाळा-महाविद्यालयांतील मूल्यशिक्षणही फार्स ठरत आहे. मुळात शाळा, महाविद्यालये आणि विद्यापीठांना कारखान्यांचे स्वरूप प्राप्त झालेले आहे. विद्यार्थ्यांची मानसिक, वैचारिक, बौद्धिक, सामाजिक, सांस्कृतिक आणि आध्यात्मिक विकास साधणे हा शिक्षणाचा खरा हेतू असून, त्याद्वारे विद्यार्थ्यांत जिज्ञासा, संशोधकबुद्धी, मनाची व

हृदयाची शुद्धता, मनाचा कणखरपणा, सर्वसमावेशकता समाजाबद्दल आपुलकी निर्माण व्हायला हवी. मात्र, प्रचलित शिक्षण पद्धतीद्वारे हे किती होते, हा संशोधनाचा विषय आहे. तसे होत असल्यास वेगळ्या मूल्यशिक्षणाची गरजच पडणार नाही. नव्या पिढीला मूल्यशिक्षण नको असं कोणीच म्हणणार नाही. खरंतर नव्या पिढीलाच नव्हे, तर सर्वच वयोगटांतील लोकांना मूल्यशिक्षणाची गरज आहे. मात्र, ते घेण्याची कोणाचीच इच्छाच नाही. वास्तविक मोठ्यांनी मूल्यशिक्षण घेतलं आणि आचरणात आणलं तर नवीन पिढीला वेगळं मूल्यशिक्षण देण्याची गरजच भासणार नाही; कारण नवी पिढी मोठ्याच्या अनुकरणातून शिकत असते. मात्र, असे न करता मूल्यशिक्षणाचा सारा भार शाळांवर टाकून सर्व समाज मोकळा होतो आहे. मूल्यशिक्षणाच्या माध्यमातून धार्मिक शिक्षण देण्याचा प्रयत्नही होतो आहे. आपली राज्यघटना आदर्श असून, तिच्या चौकटीतच मूल्यशिक्षण व्हायला हवे. म्हणूनच एकूणच मूल्यशिक्षणाचा फेरविचार करण्याची गरज आहे.

मूल्यांच्या अभावामुळे अनेक जण एकाकी, एकांगी, हतबल, निरुत्साही, नैराश्यग्रस्त व हिंसाचारी बनत आहेत, हे खरे. त्यामुळे व्यापक मानवतेचा संदेश देणारे, चांगला माणूस घडविण्यावर भर देणारे, मुलांना प्रश्न विचारायला लावणारे, प्रत्येक मुलाचे वेगळेपण जपणारे आणि राज्यघटनेच्या चौकटीत राहणारे मूल्यशिक्षण द्यायला हवे. याबाबत आपण सर्वांनीच अंतर्मुख होऊन विचार करायला हवा.

मानवी जीवन समृद्ध बनवण्यासाठी खालील नैतिक मूल्ये अंगिकारण्याची गरज

१	वक्तशीरपणा	२	सर्व धर्म सहिष्णुता
३	वैद्न्यानिक द्रुष्टीकोन	४	नीटनेटकेपणा
५	सार्वजनिक स्वच्छता	६	राष्ट्रभक्ती
७	राष्ट्रीय एकात्मता	८	सहनशीलता
९	प्रामाणिकपणा	१०	क्षमाशीलता

सद्भावना

हीच अमुची प्रार्थना अन् हेच अमुचे मागणे
माणसाने माणसाशी माणसासम वागणे
भोवताली दाटला अंधार दुःखाचा जरी,
सूर्य सत्याचा उद्या उगवेल आहे खात्री,
तोवरी देई आम्हाला काजव्यांचे जागणे
माणसाने माणसाशी माणसासम वागणे

धर्म, जाती, प्रांत, भाषा, द्वेष सारे संपू दे
एक निष्ठा, एक आशा, एक रंगी रंगू दे
अन् पुन्हा पसरो मनावर शुद्धतेचे चांदणे
माणसाने माणसाशी माणसासम वागणे

लाभले आयुष्य जितके ते जगावे चांगले
पाउले चालो पुढे.. जे थांबले ते संपले
घेतला जो श्वास आता तो पुन्हा ना लाभणे
माणसाने माणसाशी माणसासम वागण

भीम स्तुति

दिव्य प्रभरत्न तू , साधू वरदान तू ,
आद्य कुल भूष तू भीमराजा ।। १ ।।

सकल विद्यापति , ज्ञान सत्संगति ,
शास्त्र शासनमति , बुध्दी तेजा ।।२ ।।

पंकजा नरवरा , रत्त स्वजन उद्धारा ,
भगवंत आमुचा खरा , भक्तकाजा ।। ३ ।।

चवदार संगरी शास्त्र धरिता करी ,
कांपला अरि उरी , रौद्र रूपा ।। ४ ।।

मुक्ती पथ कोणता , जीर्ण स्मृती जाळीता ,
उजाळीला अगतीका , मार्ग साजा ।। ५ ।।

राष्ट्र घटना कृति , शोभते भारती ,
महामानव बोलती , सार्थ सज्ञा ।। ६ ।।

शरण बुद्धास । शरण धम्मास ।
शरण संघास मी भीमराजा ।। ७ ।।

ज्ञानचौर्याचा विषाणू

ज्ञानचौर्याचा विषाणू जगभर धुमाकूळ घालतो आहे. अगदी कच्चे-मच्चे विद्यार्थी ते बनचुके उच्चपदस्थ, कोणीही अपवाद नाहीत. शिक्षणक्षेत्रात तर हे पीक अमर्याद फोफावले आहे. त्यापायी लोकांना पदव्याच नव्हेत, तर नोकऱ्याही गमवाव्या लागलेल्या आहेत. तरीही चौर्यकर्म थांबत नाही. याला 'कॉपी-पेस्ट' किंवा 'कट-पेस्ट' असे तंत्रशुद्ध नाव दिले गेले आहे. अशा वेळी आठवतो जीवशास्त्रज्ञ डार्विनच्या जीवनातला प्रसंग.

डच ईस्ट इंडियातल्या कुणा अल्फ्रेड वॉलस याने १८५८ मध्ये 'निसर्गाची निवड' या विषयावर लिहिलेले आपले संशोधनात्मक लेखन परीक्षणासाठी डार्विनकडे पाठवले. स्वतः डार्विन देखील याच विषयावर गेली अनेक वर्षे संशोधन करीत होता. त्यासाठी त्याने गालापागोस बेटावरच्या प्राणिजीवनाचा दीर्घ आणि सूक्ष्म अभ्यास करून निरीक्षणे नोंदवून ठेवली होती. त्याचप्रमाणे लंडन प्राणिसंग्रहालयातल्या एप, ओरंगुतन या माकडांचा दीर्घकाळ अभ्यास करून मानव व माकड यांतले वर्तनविषयक साम्य तपशीलवार नोंदवले होते. तथापि, प्रचलित धर्मश्रद्धांना घाबरून आपले संशोधन प्रसिद्ध करण्याचे धाडस दाखवले नाही. पवित्र बायबलच्या श्रद्धेनुसार, 'प्रत्यक्ष प्रभूनेच मानवाला आपल्या स्वतःच्या प्रतिमेनुसार घडवले आहे. मनुष्यात ईश्वरी अंश आहे.' इथे तर मनुष्य हा माकडापासून उत्क्रांत झाल्याचे संशोधन मांडायचे होते! ते पाखंड ठरले असते. त्यासाठीची शिक्षा कठोर होती. पूर्वी गलीलिओ वगैरे

अनेक वैज्ञानिकांना देहदंडाच्याही शिक्षा सुनावण्यात आल्या होत्या. त्यामुळे, वीस वर्षे डार्विनचे संशोधन तसेच बासनात पडून होते.

अशावेळी वॉलस याचा त्याच विषयावरचा शोधनिबंध आला. डार्विनने तो वाचल्याबद्दलचा तसा कुठेच पुरावा नव्हता. त्याला तो दडपता आला असता. दोघाही संशोधकांची निरीक्षणे आणि निष्कर्ष पुष्कळच जुळत होते. याचा अर्थ असा की डार्विनने इतक्या वर्षांचे कष्टपूर्वक केलेले संशोधन आपले स्वतःचे, स्वतंत्र (ओरिजिनल) असल्याचे श्रेय नाकारले जाणार होते. विज्ञानाच्या इतिहासात अमर होण्याची ही संधी धुळीला मिळणार होती. तरी डार्विनने वॉलसचा निबंध भूगर्भशास्त्रज्ञ चार्ल्स ल्येल याच्याकडे धाडला. लगोलग, विज्ञानाला वाहिलेल्या 'लिलियन सोसायटी'ने या दोघांचे सादरीकरण १ जुलै १८५८ रोजी ठेवले. अनेक बडे शास्त्रज्ञ हजर होते. ल्येल आणि दुसरे वनस्पतिशात्रज्ञ जोजफ हूकर या दोघांनीही डार्विनचा निबंध पूर्वीच वाचला होता आणि हे सर्व ताबडतोब प्रसिद्ध कर म्हणून सल्ला दिला होता. हा इतिहास सादरीकरणाच्या वेळी समोर आला. वॉलसच्या ध्यानात आले की डार्विनचे संशोधन आपल्या आधीचे असून ते दुसऱ्या दोन तज्ज्ञांना माहीतही होते. त्याने डार्विनच्या संशोधनाचे प्राथम्य मान्य केले. म्हणजेच त्याने डार्विनच्या प्रामाणिक व सत्यनिष्ठ वैज्ञानिक वृत्तीलाही मान्यता दिली होती. आता डार्विनचा 'प्रगट' होण्याचा मार्ग प्रशस्त झाला. त्याने भय झिडकारले. नंतर नोव्हेंबर १८५९ साली प्रसिद्ध झाला डार्विनचा जगप्रसिद्ध ग्रंथ, 'दि ओरिजिन ऑफ स्पीसीज'.

खऱ्या-खोट्या, छोट्या-मोठ्या श्रेयासाठी आपली किती धडपड सुरू असते! डार्विनला अमर होण्याची संधी असताना देखील त्याने विज्ञाननिष्ठ इमान सोडले नाही. नीतिमत्ता, सत्यनिष्ठा, मूल्यग्रह यांचे हे मूर्तिमंत दर्शन होय.

धम्मपदातील नैतिक मुल्ये

धम्मपद हा ग्रंथ नैतिक मुल्यांच्या दृष्टिने अतिशय महत्वाचा ग्रंथ आहे, म्हणून या ग्रंथाचे पठन जागतिक स्तरावर होत आहे. श्रीलंकेमध्ये धम्मपदाचे पाराण केल्याशिवाय कोणत्याही भिवसूची उपसंपदा पूर्ण घेऊ शकत नाही. ब्रम्हदेश, सयाम, कम्बोडिया आणि लाओस येथेही धम्मपद कंठस्थ मरणे प्रत्येक भिक्सू करिता आवश्यक मानले जाते. नैतिक दृष्टिने हा ग्रंथ जितका गंभीर आहे. तितकाच त्याचा पासादगुण देखील वाचण्यालायक आहे. तथाग्रत बुध्दाच्या काळात त्योनी उपदेशिलेले शब्द, वाक्य आणि गाथा तोंडपाठ करण्याची प्रथा होती. भिक्सू–भिवसूची बुध्दवचन कोणत्या ना कोणत्या रूपाने संकलन केले जात असे. 'धम्मपद' हा ग्रंथ अशाच प्रकारच्या बुध्दाच्या उपदेशांचे संकलन आहे. यामध्ये एकूण 423 गाथा आहेत आणि त्या 26 वग्गामध्ये विभागलेल्या आहेत.

सम्राट अशोकच्या समोर 'अप्पमाद वग्गा' चे पठण झाले होते अशी एक आरण्यायिका आहे. यावरून सम्राट अशोकाच्या काळात मनसे इ.स. पूर्व तिसऱ्या शतकामध्ये 'धम्मपद' अस्तित्वात होते असे निश्चितपणे म्हणता येईल. धम्मपदाचा संस्कृतमध्ये ही भाषांतर झाले आहे, चीनी भाषेमध्ये सुध्दा भाषांतर झाले आहे. 'धम्मपद' या नावावरूनच त्याचा अर्थबोध होतो. धम्म म्णजे न्याय, नीतीसुध्दा आचरण आणि पद म्हणजे मार्ग, म्हणजेच धम्मपद याचा अर्थ न्याय, नीतीयुक्त आचरणाचा मार्ग.

या ग्रंथाची विश्वत्ता प्रचुर शैली आणि विषयाची मांडणी अतिशय वैशिष्टेपूर्ण आहे. सामान्य माणासाच्या व धम्मिक भिक्सूचा आचरणाविषयल सुध्दा उपदेश देण्यात आलेला आहे. त्या काळातील चतुर व शहाण्या माणसाने प्रसंगानुरूप कसे वागावे किंवा आयुष्याचा मार्ग आक्रमण करीत असता कोणत्या गोष्टी लक्षात ठेवाव्या व कोणत्या गोष्टींमुळे त्याला प्राप्ती होईल, पूर्वजांनी कोणत्या गोष्टींचा उपयोग करून घेतला, मनुष्याच्या कुशल–अकुशल आचरणाचा परिणाम इत्यादी विषयी सुध्दा आपल्याला या

ग्रंथाच्या अभ्यासातून माहिती प्राप्त होते.

जेव्हा मनुष्य धन संपत्तीला जीवनामध्ये सामधनाच्या ठिकाणी साध्य मानतो, तेव्हा नैतिक तसेच मानविय मुल्यांचे अवमुल्यन होण्यास सुरूवात होते. त्यावेळी मनुष्याचे उचित व अनुचित साधनांनी धन कमाविणे एवढेच जीवनाचे सर्वोच्च साध्य होऊन जाते. यासाठी मनुष्य चोरी, डाका, घुसखोरी, हत्या, व्यभिचार यासारखे पापकर्म करण्यामध्ये व करविण्यामध्ये लागून राहतो. जेव्हा मनुष्याच्या मनामध्ये धनाच्याप्रती तृष्णा उत्पन्न होते, तेव्हा त्याचे मन नियंत्रित, संतुलित राहत नाही. चित्ताच्या असंतुलित घेण्यामुळे मनुष्य वाईटातील वाईट कामे करू लागतो. संपत्तीच्या प्रति लोभ निमाण झाल्यामुळे मनुष्य आर्थिम, धार्मिक, शैक्षणि, सामाजिक, राजकीय, दुराचरण करू लागतो. त्यामुळे त्याचे नैतिक पतन होण्यास सुरूवात होते, परंतु आवतीरहित व्यक्ती, विकाररहित व्यक्ति वेगवेगळया स्तरावरील नैतिक मुल्यांची जोपासना करतो. म्हणून मनुष्याने नेहमी सम्यक आचरण केले पाहिजे, अशी शिकवण आपल्याला धम्मपदामधील प्रत्यक गाथेमधून मिळते. याने मला शिव्या दिल्या, मला मारले, मला हरविले, मला लुटले इत्यादी क्रुरित भाव मनात बाळगून राहिल्यास परस्परामधील तेढ व वैर याचे निराकरण न होता ते वाढतच जाते. ''न हि वेरेन वेरानि सम्मान्तिनं कुदाचनं। अवैरेनच सम्मारी एस धम्मं सनातनो।।'' अर्थात वैराने वैर शांत होत नाही तर अवैरानेच वैर शांत होते, हाच सनातन धम्म आहे. धम्मपदामध्ये म्हणूनच चित्ताचे संयमन केले पाहिजे असे सांगितले आहे. कारण चित्त स्वाभावताच चंचल आहे. त्याचा आवर घालणे, चंचलतेपासून मनाचे निवारण करून त्याला स्थिर करणे अत्यंत ..... कर्म आहे. ज्याप्रमाणे बाण तयार करणारा तासून–तासून बाण सरळा करतो, त्याचप्रमाणे बुध्दिवान मनुष्य आपल्या चित्ताला प्रयत्नपूर्व वळण लावतो. याप्रमाणे चित्त संयमित झाल्यास जेवढे हित आई–वडिल व इतर आप्लेष्ट करू शकत नाहीत त्यापेक्षा जास्त हित योग्य मार्गावर लागलेले चित्त करते, याविषयीचे सुंदर संदेश धम्मपदाच 'चित्तवग्गामध्ये' दिलेला आहे. पुप्फवग्गामध्ये सील–सदाचाराचे महत्व प्रतिपादित करण्यात आलेले आहे. उदा. ''न पुप्फगन्धो पटिवातमोरी न चन्दनं तगरं माल्टीका वा। सतच्च गन्धो पटिवातमोरी सब्बा दिसा सप्पुरिसो पवाति।।'' अर्थात चंदन, नगर, माल्लिका इत्यादी फुलांचा सुगंध वाऱ्याच्या

विशिष्ट दिशेनेच जातो परंतु सील–सदाचारानुसार आचरण करणाऱ्यांचा (कर्मरूपी) सुगंधी चारही दिशेने सर्वत्र वाहतो. म्हणून सीलवानाच्या मार्गात कुठल्याही प्रकारचा मार अडथळा निर्माण करू शकत नाही. .....वग्गामध्ये सुध्दा अतिशय महत्वाचा उपदेश आपल्याला पहायता मिळतो. यामध्ये ब्राम्हण, क्षमण, भिक्खू म्हणण्यास कोण पात्र आहे, याविषयी सांगितले आहे. स्वताप्रमाणेच दुसऱ्यांना समजावे असा उपदेश यामध्ये दिलेला आहे. उदा. ''सब्बे तस्सन्ति दण्डस्स सब्बेसं जवितं पियं। अत्तानं उपमं कत्वा न हनेय्य न थातय्ये।।'' अर्थात सर्वच दंडाला, शिक्षेला घाबरतात, सर्वांनाच आपले जीवन प्रिय आहे. म्हणून सर्वांना आपल्यासारखे समजून ना कुणाचा घात करावा, ना कुणाला मारावे. याचप्रमाणे 'बुध्दवग्गा' मध्ये सुध्दा कुशल कर्माविषची महत्वाचा उपदेश आहे. ज्याने आपले राग–व्देष–मोह जिंकले आहेत त्याला तृष्णा काहीही करू शकत नाही. अशा धैर्यवान ध्यानरत व परमशांत, स्मृतिमान बुध्दाची सर्वत्र प्रसंशा होते. या जगात मनुष्य जन्म, धम्मश्रवण आणि बुध्दाची उत्पत्ती ह्या गोष्टी कठिण आहेत म्हणून कोणतेही पाप न करता पुण्याचा संचय करून चित्ताचे दमन करणे हीच बुध्दाची शिकवण आहे. सहनशिलता व क्षमाशिलता हेच परमतप असून निब्बान हे परमश्रष्ट पद आहे. निंदा न करणे, घातपात न करणे, संयम राखणे, भोजनाची मात्रा जाणवे, चित्त परिशुध्द करणे हीच धम्मपदाची शिकवण आहे. भयामुळे पर्वत, वन, उद्यान, वृक्ष इत्यादींना शरण जाऊन त्यांना देवता मानणे मंगलकारक नसून त्यामुळे सर्वप्रकारच्या सुखापासून सुटका घेऊ शकत नाही. बुध्द, धम्म व संघाच्या अनुसरणातूनच दुःखमुक्त होता येते. यामधील आर्य अष्टांगिक मार्ग यांचा स्वीकार करणे हेच रसादायक अनुसरण आहे. या धम्मपद ग्रंधाचा संक्षिप्त सार म्हणून असे म्हणता येईल की दुःखमुक्त घेण्याची पहिली पायरी म्हणजे मनाचे शुध्दीकरण करणे होय. कारण मन जर शुध्द असेल, पवित्र असेल तरच त्यामध्ये चांगल्या विचारांची रूजवणूक घेऊ शकते. त्यासाठी मनाला पवित्र, शुध्द व स्थिर करण्याची आवश्यकता आहे. जे मन स्थिर व नीतीमूल्ये जपणारे असते तेच मन सुखी, आनंदी आणि समाधानी जीवन प्रदान करू शकते. हाच खरा धम्मपदामधील उपदेशांचा उद्देश आहे. भूतलावरील प्रत्येक भाणसाला सुख, समाधान, मनशांती केवळ याच मार्गाने मिळू शकते. या मार्गामध्ये कोणतेही कर्मकांड नाही, बाह्य

देखावा नाही, तर हा मार्ग म्हणजे जीवन जगण्याचा अतिशय सरळ व यशस्वी मार्ग आहे. माणूस श्रेष्ठ तेव्हाच होतो, जेव्हा त्याच्यामध्ये नीतीमत्ता, नैतिक असेल ही नीतीमत्ता जोपासण्यासाठीच धम्मपद या ग्रंथाचे अध्ययन होणे आज आवश्यक आहे.

अत्तहि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परोसिया

''मनुष्य स्वताच स्वताचा मालक आहे, त्याचा दुसरा कोणी ही मालक होऊ शकत नाही'' याकरिता मनुष्याने स्वताला ओळखले पाहिजे, जाणले पाहिजे, आपणच आपल्या अंतर्मनाचे निरीक्षण करीत असतांना आपल्यामध्ये जर काही दोष दिसेलत तर ते दोष दूर करण्याचा प्रामाणिक प्रयत्न केला पाहिजे. परंतु मानवी स्वभाव असा आहे की, आपण आपल्या दोषांकडे कधी पहातच नाही, सतत इतरांच्याच दोषांकडे पहातो. परंतु इतरांकडे दोषपूर्ण बोट दाखवित असतांना बाकीचे बोटे आपल्याकडे असतात आणि ते सांगीत असतात की, इतरांवर दोषारोप केल्यापेक्षा तुझ्यामध्ये जे दोष आहेत, ते दूर कर आणि मग इतरांकडे बोट दाखव. बुध्दाचा धमम हेच सांगतो की, धम्म आचरणाची सुरूवात तुम्ही स्वतापासून करा. तथागतांचे म्हणणे असे होते की, ''धम्म हा अमृतरूपी सरोवराप्रमाण आहे. मलिन मनाचा मनुष्य त्यामध्ये स्नान करून निर्मळ होतो. जर मलिन चित्तधारी काही लोक त्या सरोवरापर्यंत पोहोचून ही त्यात स्नान करून निर्मळ बनायचेप्र यत्न करीत नसतील तर तो त्यांचा दोष आहे, सरोवराचा नाही.

कोणतीही चांगली गोष्ट करतांना अनेकानेक अडथळे येतात. या अडथळ्यामधूनच आपल्याला सम्यक मार्ग काढायचा असतो. तथागत बुध्दांना सुध्दा बुध्दत्व सहजा–सहजी प्राप्त झाले नाही. त्यांच्या बुध्दत्वाच्या मार्गात कारमोठी मारसेना अडथळा म्हणून उभी होती, परंतु या सवग मारसेनेवर त्यांनी विजय मिळविला व बुध्दत्व प्राप्त केले. कामभोग, अरति, तहाणभूक, तृष्णा, आळस, भीती, कुशंका, अभिमान, लाभ–सत्कार आणि खोट्या मार्गाने मिळविलेली किर्ती ही सर्व मारसेना आहे आणि ही मारसेना प्रत्येकाच्या मार्गात अडथळा म्हणून येऊन उभी राहते. या मारसेनोचा जो पराभव करतो, तो जीवनात यशस्वी होते. विद्यार्थ्यांची नेहमी तक्रार असते की, सर! खूप अभ्यास करूनही लक्षात राहत नाही परंतु त्यांना हे माहित

नसते की, आपल्याला मारसेनेने घेरलेले आहे. तो पुस्तक वाचत असतांनाच अनेकानेक वितर्क–विचार त्याच्या डोक्यात थैमान घालीत असतात. पुस्तक वाचत असतांना त्याला वेगवेगळ्या घटना आठवत असतात. मैत्रिणींसोबत झालेला प्रेमळ संवाद त्याला बेचैन करीत असतो तर कधी घरची दयनिय स्थिती त्याला अस्वस्थ करीत असते. अशावेळेस कितीही तुम्ही अभ्यास केला तरी ही तो काहीच परिणामकारक होणार नाही, म्हणून सर्वात आधी आपल्या प्रगतीच्या मार्गात येणारे हे अकुशल विचार तुम्हाला आपल्या मनातून काढून टाकावे लागतील. त्यासाठी आपल्या मनाला नियंत्रणात आणावे लागेल. चांगल्या गोष्टींवर आपले मन एकाग्र केले पाहिजे.

एकदा संगारव नावाच्या ब्राम्हणाने तथागत बुध्दांना विचारले, 'हे गोतम! एखाद्यावेळी पुष्कळ काळापर्यंत परिचित असलेले देखील वेदमंन मला आठवत नाहीत, मग तोंडपाठ येत नसलेल्या मंत्रांची गोष्टच काय? पण असे घेण्याचे कारण कोणते ते आपण सांगाल काय?''

तेव्हा तथागत बुध्द म्हणाले, 'हे ब्राम्हण! ज्यावेळी कामविकाराने मनुष्याचे चित्त व्यग्र होऊन जाते व कामविकाराच्या उपशमाचा मार्ग त्याला माहित नसतो त्यावेळी त्याला स्वार्थ काय हे समजत नाही, परार्थ काय हे समजत नाही आणि पुष्कळ दिवस परिचित असलेले मंत्र सुध्दा त्याला आठवत नाही. ज्यावेळी त्याचे चित्त क्रोधाने, आळसाने, संशयाने ग्रस्त झालेले असते, तेव्हा आपले किंवा परक्याचे हित कशात आहे, हे तो यथार्थपणे जाणवत नाही आणि चिरकाळ परिचित असलेले मंत्र त्याला आठवत नाहीत.

(1) 'हे ब्राम्हण! भांड्यातील पाण्यामध्ये निळा किंवा काळा रंग थरला असता त्यामध्ये आपली पडछाया दिसत नाही. त्याचप्रमाणे ज्याचे चित्त कामविकाराने व्यग्र झालेले असेल त्याला आपल्या हिताअहिताचे ज्ञान होत नाही. (2) स्वच्छ पाण्याने पाण्याचे भांडे तापवून संतप्त झाले असता त्यातून वाफा निघतात व पणी उकळू लागते. अशावेळी मनुष्याला आपले प्रतिबिंब त्या पाण्यात दिसत नाही. त्याचप्रमाणे मनुष्याला क्रोध आला असता, त्याला स्वहित कशात आहे, हे समजणे शक्य नाही. (3) त्या भांड्यातील पाणी जर शेवाळाने भरले असेल तर माणसाला आपले प्रतिबिंब त्यात दिसत

नाही. त्याचप्रमाणे ज्याच्या मनाला आळसाने घेरले असेल त्याला आपले हित आणि परक्याचे हित समजणार नाही. (4) पाणी जर वाऱ्याने हलू लागले तरी देखील त्यात आपले प्रतिबिंब दिसणार नाही. त्याचप्रमाणे ज्याचे चित्त भ्रांत झाले असेल त्याला स्वहित कशात आहे, हे समजणार नाही. (5) तेच पाणी जर गढूळ झाले असेल तर त्यात आपले प्रतिबिंब दिसलणार नाही. त्याचप्रमाणे ज्याचे चित्त संशयग्रस्त झाले असेल, त्याला आपले किंवा परक्याचे हित अहित समजणार नाही. (6) तेच पाणी जर स्वच्छ आणि शांत असेल तर त्यात मनुष्याला आपले प्रतिबिंब स्पष्टपणे पहता येते. ज्याचे चित्त कामच्छंद, क्रोध, आळस, भ्रातंता आणि संशय या पाच आवरणांपासून विमुक्त झाले असेल त्यालाच स्वहित व परहित यथार्थता समजते.

अशाप्रकार मनुष्याच्या मनातील क्लेश, विकार जर दूर झाले तर तो कल्याणकारक मार्गावर आरूढ होतो, कुशल कर्म करू लागतो. म्हणूनच तथागत बुध्द म्हणतात–

''सब्ब पापस्स अकरणं, कुसलस्स असम्पदा।
सचित्त परियोदपणं एतं बुध्दानसासनं।।''

अर्थात कोणत्याच प्रकारचे पाप करू नका, कुशल कर्मांचा संचय करा आणि चित्तला परिशुध्द करा हेच बुध्दाचे अनुशासन आहे. म्हणून चित्ताला मनाला निर्मळ, स्वच्छ, परिशुध्द करण्याची आवश्यकता आहे कारण जे काही उत्पन्न होते, ते मनानूतनच उत्पन्न होते. जर का आपण वाईट विचार करीत असू किंवा वाईट कर्म करीत असू तर दुःख आपला पाठलाग तसाच करते ज्याप्रमाणे बैलबंडीचे चाके बैलांच्या पायांचा करतात. याउलट असे म्हटल्या गेले की, 'जर कां आपण चांगला विचार केला किंवा चांगले कर्म केले तर सुख आपले अनुसरण तसेच करते, ज्याप्रमाणे आपली कधीही सोबत न सोडणारी सावली. अशाप्रकार तथागतांनी दोन मार्ग सांगितले आहेत. एक कुशल मार्ग आणि दुसरा अकुशल मार्ग. तथागत आपल्या अनुयायांना सांगतात की, ही दोन मार्ग मी तुम्हाला सांगितले आहेत. आता काणत्या मार्गाने जायचे हे तुम्हाला ठरवायचे. मी केवळ मार्गदाता, मोक्षदाता नाही. ज्याला आपले कुशल मंगल करायचे आहे, तो कुशल मार्गाचे अनुसरण करेल आणि ज्यांना वाईट मार्गाच्या दलदलितच राहायचे आहे. त्यांनी त्या

मार्गाच्या दुष्परिणामांचा विचार करावा. मी कुणावर ही जोर जबरदस्ती करणार नाही. जो कुणी मनुष्य दुःखी असेल, रोगाने पीडित असेल, तेव्हा तो रोगमुक्त होण्यासाठी डॉक्टरकडे जाईल आणि तो रोगमुक्त होईल. त्याचप्रमाणे जो क्लेशाने, विकाराने पीडित आहे, दुःखी आहे तो तथागत बुध्दाकडे जाईल. त्यावर तथागत बुध्द आपल्या शिकवीरूपाने उपचार करतील आणि ते उपचार करून घेतल्यावर तो बरा होईल. परंतु जो बुध्दाकडे जाणार नाही, उपचार करून घेणार नाही, त्याच्याशी बुध्दाचे काहीही भांडण नाही. ज्याप्रमाणे डॉक्टराकडे न जाणाऱ्या रूग्णाशी डॉक्टरचे काही भांडण रहात नाही. त्याचप्रमाणे बुध्दाच्या मार्गाने न जाणाऱ्याशी काहीही भांडण राहत नाही. बुध्द सर्वांच्याप्रति केवळ मैत्रीणी, करूणेची भावना ठेवतात.

म्हणून असा धम्म विचार स्वतः जाणून, त्याप्रमाणे आचरण करून मनुष्य आपले कल्याण साधू शकतो परंतु त्यासाठी त्याला स्वतालाच या धम्ममार्गाचे अनुसरण करायचे आहे, पालन करायचे. या तत्वांचे पालन दुसरा कुणी येऊन तुमच्यासाठी करून देणार नाही तर त्या सर्व कल्याणकारक तत्वांना स्वताच जाणावे लागेल आणि त्याप्रमाणे आपल्याला आचरण करावे लागेल, म्हणूनच तथागतांनी म्हटले आहे की, ''अत्त हि अत्तनो नाथो, कोहि नाथो परोसिया'' ।

संघर्षाची परिसीमा

लहानपणी लोकांचे संडास आणि वस्तीतले उकिरडे साफ करणारा मुलगा डारेक्टर झाला!

बंधुंनो, खरेतर सांगू नये ते सांगतोय..... इतरांना प्रेरणा मिळेल म्हणून.....

आम्हा सहा भावडांना सोडून बाप रघुनाथ अवघ्या चाळीसाव्या वर्षी सरणावर गेला. तेव्हा मी फक्त 3 वर्षाचा होतो. बाप गेल्यानंतर अशी परवड झाली की, आजतागायत विसरणे शक्त नाही. आईला काही सुचेना. सहा जणांच्या पोटाची आग रोज सकाळी, संध्याकाळी कशी शमवायची या विचाराने आई रडायची. रडून–रडून आईची दातखळी बसायची. आम्ही चार बहिणी आणि दोघे भाऊ घाबरून जायचो. आईने लोकांच्या घरी विहिरीचे पाणी ओढून बाहण्याचे काम पत्कारले. मी दुसरीत होतो तेवहा दोन बहिली आमच्या घर मालकाच्या बंगल्यावर काम करू लागल्या आणि मला देखील सोबत नेऊ लागल्या. मालकाच्या घरी असलेले दुसरे घरगडी मला संडास साफ करायला सांगायचे. मी सुध्दा चुपचाप साफ करायचो. संडास साफ करून झाल्यावर मला ते बाहेरच्या पायरीवरण बसवायचे. असेल नसेल ते शिळे पाकेट खाऊ घालायचे. हे बरे की घरमालक ब्राम्हण किंवा मराठा नव्हते. मुसलमान होते म्हणून जास्त जाच नव्हता. मला आमच्या वाडीतली आपलीच एक बाई उकिरडा साफ करायला बोलवायची. मी ही मुकाट्याने साफ करायचो. ती लई सोवळं ओवळं पाळायची माझ्यावर गोमूत्र शिंपडायची, तिचा मुलगा नी मी एकाच शाळेत वर्गात असूनही ती मला नेहमी उंबउठ्या बाहेरच बसवायची आणि दुधाचा चहा द्यायची. दारिद्र्य खच्चून भलेले असूनही मी शाळेत सर्व तुकड्यात पहिला यायचे. पण खाकी पॅन्ट नसायची त्यामुळे आमचा धोतर सदरा घालणारा जाधव हेडमास्तर मला खून मारायचा, वाघमारे म्हटल्यावर जास्तच कातवून कातवून–मारायचा। 3/3 दिवस हात दुखायचे, आईला मला सांगता येत नव्हतं की जाधव

मास्तर मला चड्डी फाटकी असल्यामुळे हाणायचा! आई मला शाळेत जातांना शिखात खारवलेले शिळ्या भाकरीचे तुकडे द्यायची. त्यात खिसेही मोठे मोठे भोक पडलेले, मग काय थैलीच्या दप्तरामध्येच सगळं.... एकदा पिकनिक आली, आईला म्हटले काहीतरी चांगलं दे. तेव्हा आईने डब्यात दोन टपोरे नागपूरी बोर घेऊन दिले आणि आंबलेले, वाळवलेले तुकडे डब्यात दिले. असो.

सकाळी संडास साफ करायचो आणि दुपारी शाळेत गेलो की, आचमा हेडमास्तर देखील मला शिक्षा म्हणून तेच करायला सांगायचा. नाहीतर सरांची छडी हातावर बसलीच म्हणून समजा. कातोरे मास्तर तर मूठ आवळून पाठीत असे दणके द्यायचा की, जणु जात्यातच खुट्टा ठोकतोय. आमच्याच वस्तीत राहणारा तो कातोरे मास्तर लई जालिम. माणूस जातीने मराठा पण पेशव्यातून आणि औरंगजेब पेक्षाही भयंकर. काहीही प्रश्न विचारला की, उत्तर देण्यासाठी माझंच बोट वर असायचं... पण कातोरे मास्तर अशा नजरेने बघायचा जणू मी मेलेलं जनावर.

चौथीचा रिझल्टचा दिवस आला सर्वांना माहित होते की सुदाम सर्व तुकड्यांमध्ये पहिला येणार, त्यावेळी पोस्टाने घरी रिझल्ट यायचा, आम्ही पोस्टमन दिसला रे दिसला की, मागे–मागे धावायचो पण तो भलत्याच वाडीचा निघायचा.

एकदाचा निकाल हाती पडला आणि काय सांगू....! कतोरे मास्तरच्या शेजारी राहणारा मराठा पोरगा शाळेत पहिला आला आणि मी चक्क एका विषयात नापास..... माझ्या आईने मग कमरेला पदर खोजला, बहिणींनी पण जोड पकडला आणि मास्तरला अशा शिव्या घातल्या की बस.. ..... तेव्हा त्याने सांगितले चुकून झालं, मग त्याने माझ नविन कार्ड बनवलं, 600 पैकी 596 मार्क मिळालेले होते. जातीयतीची बाराखडी हळू–हळू मला कळू लागली होती. गोरेवाडीत बाइस्कोप वाला आला रे आला की, माझ्यात वेगळंच वारं संचारायचं. पण पैसे नसायचे. बाइस्कोपच्या पेटीवर फिरणारी ती गाण्याची काळी तबकडी आणि तो कोपऱ्यात लावलेला भोंगा मला खूप अट्रॅक्ट करायचा. त्याचा हॅन्डल तो असा फिरवायचा की, मोहंमद रफीचा आवाज बाईचा घेऊन जायचा आणि कधी–कधी इतका स्लो होऊन जायचा

की लता मंगेशकरचा आवाज भसाड्या माणसा सारखा व्हायचा. मला बाइस्कोप बघायला नाही मिळायचा, मग मी स्वताचाच बाइस्कोप बनवला. रोज नवे–नवे चित्र जोडायचो आणि भाऊ ते फिरवत गाणे मला दाखवायता.

मला लहान–लहान मंडप बांधण्याचा, मातीचे बैल, मातीचे घर, मंदिर बनवायला जाम आवडत असायचे. विहिरीचे पगेरे, मॉडेल बनवनणे. पाणी भरलेल्या बल्ब मधून आरसा चमकवून फिल्मचे तुकडे बघणे तर भयंकर आवडायचे. वाडीतचे पोट्टे मला सहसा खेळायला घेत नसत. नकट्या नफऱ्या फाटक्या म्हणून चिडवायचे. मग मी सोडा लेमनच्या बाटल्यांची बूच जमवून झांझरी बनवून वाजवत बसायचो. मी सहावीत गेलो आणि खान साहेबाच्या बंगल्यात शुटिंगवाले आले. शत्रुघ्न सिन्हा, राजकपूर आलेले, तोबा गर्दी झाली. मी संडास साफ करणारा म्हणून मागच्या दाराने मला हमीनि आत घेतलं. पण बंगल्यात घुसायची परवानगी नसल्याने काही दिसायचे नाही. पण लई थाट–माट त्यांचा. शत्रुघ्न सिन्हा टॉयलेटमध्ये आले, मी टायलेटच्या बाजुलाच असल्यामुळे त्यांचे दर्शन झाले, माझ्याकडे बघून हसले. पण माझी बोलायची डेरिंग झाली नाही. कारण ह्या जाती–पातीच्या भिंती आणि वरून बवखळ मिळालेलं दारिद्र्य माणसामध्ये प्रचंड न्युनगंड निर्माण करीत असते. त्यामुळे तेव्हा चुकूनही वाटलं नाही की, हा इतका मोठा माणूस एक दिवस माझ्या डायरेक्शन खाली माझ्या सिनेमात काम करेल.

गोरेवाडीत बाबासाहेबांची जयंतीची मिरवणूक निघाली की, मला काय करू आणि काय नाही असं व्हायचं, कारण आई, बाबासाहेबांबद्दल आणि बुध्दा बद्दल इतकं सांगायची की, तिला हे कसे काय माहित याचं आश्चर्य वाटायचं. एकदा विचरले तर तिने मला एक कापडात गुंडाळलेला एक भला मोठ्ठा गठ्ठा काढून दिला.... बघतो तर काय त्यात बहिस्कृत भारत, मूकनायक, जनता, प्रबुध्द भारत या सर्व बाबासाहेबांच्या पेपरांचे अंक होते. म्हणाली तुझ्या बापाला खूप वेड होतं हे वाचण्याचे. निळी टोपी घालायचा तुझा बाप. आता तू वाच हे सगळं! आई, बाबासाहेबांची आणि बुध्दाची जयंती अशी साजरी करायची की आक्खी गोरेवाडी बघायची. स्वता जुने जोड नेसायची पण पोरांना नवे कपडे घ्यायची म्हणजे घ्यायचीच! एकदा

गोरेवाडीत बाबासाहेबांचे चिरंजिव भिक्षुक घेऊन आले. आईने चवक त्यांच्यापुढे वंदन केले आणि असे कराचे ते मलाही शिकविले.

सहावीचीच गोष्ट, शाळा लई मोठी, नाव होतं पुरूषोत्तम शाळा. शाळेच्या नावाने डर भरून यायचा....वाटायचं की, उत्तम पूरूष घडविणारी शाळा.... पण हळू–हळू पँथर संघटनेची जुळल्यामुळे पुस्तकं हाती पडायला लागली..... शंकर काकळीज, रंजन जगताप, रवी खडांगळे, प्रियकीर्ती त्रिभूवन, भीमराव पगारे, यांच्यामुळे चळवळ कळायला लागली. मी शाळेत भाषण करायला लागलो. ऑगस्ट महिना आला, मला नांदूरकर मास्तराने भाषण करायला सांगितलं.....मी शंकर भाऊकडे गेलो, म्हणालो टिळका बद्दल बोलाचंय....म्हणे लिही ज्याची पुण्यतिथीच लक्षात ठेवावी असा नेता. आमच्या महात्मा फुलांच्या केसाची ही सर नसलेला..... टिळक म्हणजे गणपत्तीचं खूळ आणून आमच्या शिवाजी महाराजांना डावलणारा..... पँथरमुळे बाबासाहेब कळायला लागले, बाबुराव बागूल वाचले, असो.

असो, रिसल्टचा दिवस उगवला. काळे नावाचा मास्तर माझा निकाल देईच ना, म्हणे आईलाच घेऊन ये तुझ्या. दोन किलोमीटर पळत–पळत घरी गेलो, आईला शाळेत नेले. आई पण जाम घाबरली. काळे सर आईला म्हणाले....पेढे कुठाय पेढे? आठ तुकड्यांमध्ये पहिला आला तुमचा पोरगा. आईला रडूच कोसळले. सरांनी स्वताच पेढे दिले. आठवीला गेल्यावर, वर्तकबाई क्लास टिचर म्हणून आल्या, बाई कुणास ठाऊक कशासाठी रोज डब्बा उरवायच्या आणि खून प्रेमाने माझ्या पर्यंत पोहोचवायच्या. संगीताचा पंडित मासतर, मी चांगला गात असतांना ही मला तो समुहात घेत नव्हता. कारण एक तर माझी जात आणि माझे कपडे....मला आठवते कधी–कधी तर चक्क बहिणींचे आपले सारखे ब्लाऊज घालून शाळेत जायचो. मोठी बहिण कामाला लागली थोडं फार सगळं सुरूळीत सुरू झाले. आम्ही सर्व भावंडं बहिणीला राज सायंकाळी बस स्टँडवरून आणायला जायचो. कारण वाडीपासून बसस्टँड दोन मैल लांब आणि सुनसान रस्ता, ती आम्हाला बसमधून उतरल्यावर उसाचा रस, गोडी शेव, कधी–कधी डोसा वगैरे खाऊ घालायची. एक दिवस आम्ही भावंडं सायंकाळी स्टँडवर पोहोचलो. एक तास गेला, दोन तास गेले, अगदी रात्रीचे

बारा वाजले, पण बहिण आलीच नाही. दाने दिवसांनी कळलं की तिने लग्न केलं..... पुन्हा सगळं छान–छान होऊ लागलं. माझी आठवीची परीक्षा आली. दुसऱ्या दिवशी पेपर म्हणून मी माळ्यावर बत्तीच्या उजेड्यात अभ्यास करीत होतो, रात्रीचे दोन वाजले अन् आमची दानादानच उडाली.... आई थरथरायला लागली, मोठ मोठ्याने ओरडू लागली, भिंतीवर डोकं आपटू लागली, डोकं फुटलं, रक्त टपकू लागलं, आईजवळ कुणीही गेलं की ढकलून द्यायची. चार–चार माणसं मिळून देखील तिला आवरू शकली नाही. आम्हा भावंडांना काही सुचेना, कुणी बोलायचं भूत बाधा झाली तर कुणी बोलायचं वेडी झाली. मग काय दुसऱ्या दिवसापासून रोज भगत घरी येऊ लागले, आईला झाडूने, चाबकाने, चपलेने मारू लागले. भूत उतरवू लागले....परिणामी काहीच दिवसात आईची शुध्द हरपली, आई मुकी झाली... .आईला दिसेनासे झाले. शेजारच्या मुस्लीम लोकांनी सुचवले म्हणून आम्ही नादान भावंडांनी होकार दिला. काही मौलाना भूत उतरावयास येऊ लागले. काही काळी बाहुली जाळले, बाटलीत भूत धरून जमिनीत आडवे, लिंबू काय, अंडे काय, लई–लई विचित्र प्रकार पाहिले, दोन वर्षात आठ भगत आले. आईला खूप मारायचे, मी खूप शिव्या द्यायचो त्यांना....असो, काही केल्या आई बरी होईना. एकाने सुचविले चाळीसगावंला तिथे डोंगरावर परी मुसा कादरीबाबाचा दर्गा आहे....असे आजार तिथले मौलाना, फकीर एका झटक्यात ठीक करतात. मग काय गेलो आम्ही आईला घेऊन माझीमुकी आंधळे आई रात्रंदिवस उपाशी पोटीच तिथल्या दर्ग्याच्या लोखंडी जाळीला पुतळ्या सारखी धरून बसायची. भाऊ आणि मी दोन दिवसा आड चक्करा मारायचो. नंतर मौलवी म्हणाला तुम्हारी माँ अब ठीक हो गयी, लोगों को ब्याज खिलाओं, मग आभारी 500 लोकांना अन्नदान दिले.... घरी आलो पण आई जशीच्या तशीच.

अखेर दोन वर्षांनी आई बरी झाली, पण एका मासोपचार तज्ञ डॉक्टरमुळे. पण सगळ्या तुकड्यात पहिला येणारा मी दहावीला जेमतेम 50 टक्के मार्कांनी पास झालो. 11 वीला एका मित्राने छत्रभारती नावाच्या विद्यार्थी संघटनेत सामिल केले. काही बैठका, दोन–तीन शिबीर अटेंड केले. अंधश्रध्दा म्हणजे काय समजलं. नरेंद्र दामोलकर, अर्जुन जाधव, श्याम मानव सारख्या लोकांकडून जे शिकायला मिळालं त्याने आयुष्यच पालटलं. जाती

पातीच्या बाहेर बघायला शिकलो, पँथरने विद्रोही बनवलं तर छात्रभारतीने संतुलन दिलं. खऱ्या अर्थाने जीवन व्यापक झालं. बुध्द मला तिथेच जास्त समजले आणि दिसले. बुध्दाच्या समाजवादाचा माझ्यावर असा असर झाला की, मी माझ्यापेक्षा 2 वर्षांनी मोठ्या असलेल्या मुलींशी आणि ते देखील विधवा मुलीशी लग्न केले. पुढे आमची आई बरी झाली आणि काही दिवसांनी माझ्या बहिणीला देखल सिझोफ्रोनियाचे अटॅक येऊ लागले. नवी संकट उभी राहिले. तिचा त्रास इतका भयानक होती की, सांगायलाच नको....एकदा सर्व घरच्यांनी मिटींग घेतली आणि ठरवले की, बहिणीला लांब कुठे तरी उत्तर प्रदेशात सोडून यायचे...हे आमचे अज्ञानच होत. पण छात्रभारती सारख्या विचारवंताने भानावर आणले होते. अखेर ठाण्यात भेटल, हॉस्पीटल पोलिसांच्या मदतीने पोहोचलो. भाऊ आणि मी महिणा पंधरा दिवसापासून ठाण्याला येऊ लागलो, बहिणीला भेटू लागलो.

बाकी बहिणींचे वय वाढू लागले. लग्न जमेनात. आईची तर दृष्टीच गेली होती, त्यामुळे एकून सगळ्यांचीच वाताहत झाली होती. भाऊंची देखील तिशी उलटली... अखेर 33 व्या वर्षी मामाच्या पोरीशी भाऊचे लग्न लावले. काही दिवसात भला NSD च्या Interview साठी मुंबईला बोलावलं. वेळेत पोहोचावे म्हणून मी आदल्या दिवशीच जोगेश्वरीला एका मित्राकडे जावून थांबलो. नेहरू सेंटरमध्ये 15 व्या माळयावर सकाळी 10 ला लेखी परीक्षा होती. मी आठला जोगेश्वर स्टेशनवर पोहोचलो पण लोकलमये चढताच येईना. 11 वाजता वरळीला पोहोचलो. आयुष्यात पदोपदी इतकी नाटकं आली की, एक फिल्म बनेल. 15 व्या माळ्यावर जातांना नेमकी 7 व्या माळ्यावर लिफ्ट बंद पडली मी मध्येच अडकलो. पुढे जेव्हा पोहोचलो तेव्हा सर्वांची लेखी परीक्षा संपलेली होती. त्यांनी अर्धा तास दिला. कसाबसा पेपर लिहिला. अर्धा तास तोंडी परीक्षा झाली. निराश घेऊनच नाशिकला घरी पोहोचलो आणि दुपारी चार वाजता डायरेक्टर तार आली की, मी पास झालोय. दिल्लीला फायनल Interview ला बोलावलंय. गिरीश बर्नाड, विजया मेहता, रोहिणी हट्टांगडी, रतन थिय्याम असे 10/12 लोक बसलेले, आणि तिथेही selection झालेंच. दिल्लीला गेलो. नविन विश्व घेत सगळं. खायची, राहायची, कपड्याची अजिबात चिंता नश्ती. चिंता होती ती फक्त घरची, बहिणींच्या लग्नांची. पुढे बहिणीचं काय झालं हे इथे लिहिणे खूपच

अवघड आहे. एक मोठी कादंबरी होईल इतकी संघर्षमय गोष्ट आहे तिची.

मी दिल्लीहुन एका बर्षाने घरी आलो, मे महिना होता, भाऊला मुलगी झाली आणि एक नविनच Scrqedy सुरू झाली. जन्मलेली मुलगी डोळेच उघडेना. म्हणजेच तिच्या पापण्या चिपकलेल्या निघाल्या. आता नविन संघर्ष सुरू झाला. मुलीला दृष्टी आणण्याचा. पोटतच मुलींना मारण्याच्या संस्कृतीत आम्ही मुलीला दृष्टी आणण्यासाठी झगडू लागलो. तोच संघर्ष उम्मीद चित्रपटात मांडला! शत्रुघ्न सिन्हा साहेबांना घेतलं. पूनम चिरलो, मृणाल कुलकर्णी, सुलभा देशपांडे, हिमानी शिवपूरी, अशोक लोखंडउे, मोहन जोशी, मिलिंद गुणाजी, निदाखान असे 15 ऍक्टर घेतले. सिनेमा संपला तेव्हा एक मित्र म्हणाला, विश्वास बसत नाही, लहानपणी लोकांचे संडास आणि उकिरडउे साफ करणारा मुलगा आज डायरेक्टर झाला. शत्रुघ्न सिन्हा साहेबांनी विचारले पुढे त्या अंध मुलीचे काय झालं? म्हटले, अब वो इस दुनिया में नहीं है सर! डॉक्टर से सलाह मशवरा लेके भाई को और एक बेटी हुई लेकिन वो भी..... साहेबांच्या डोळ्यात पाणी आले. आई गेली, भाऊ गेला, मुलगी गेली, आता कोरोणाच्या काळात 22 वर्षाचा मुलगा ही गेला....माझ्या संघर्षाची परिसीमा खूप लांब लचक आहे, लिहिन लवकरच आत्मकथेत....

एवढे मात्र खरे की कितीही संकटे आली, परिस्थिती लाख वाईट झाली तरी पण बाबांची, बुध्दांची लेकरं आम्ही हार कधी मानत नाही. आत्महत्या तर मुळीच करत नाही हे नक्की.

सुदत्त उर्फ अनाथपिंडिक श्रेष्ठी

शाक्यांना यथावकाश उपदेश करून बुध्दगुरू कपिलवस्तुहून मोठ्या भिक्षुसमुदायासह वर्तमान पुनः राजगृहाला आला. तेथें तो सीतवनामध्यें रहात होता. त्या वेळीं अनाथपिंडिक नांवानें प्रसिध्द असलेला श्रावस्ति येथील श्रेष्ठी कांहीं कामानिमित्त राजगृहाला आपल्य मेहुण्याच्या (बायकोच्या भावाच्या) घरी आला होता.

या वेळीं अनाथपिंडिकाचा मेहुणा मोठ्या गडबडींत होता. त्याच्या घरीं भोजनसमारंभाची तयारी चालली होती. ते पाहून अनाथ पिंडिक त्याला ह्मणाला ''मी तुमच्याकडे आलों असतां तुह्मी सर्व कामें टाकून माझें आदरातिथ्य प्रथमतः करीत होतां; पण आज मी पहातों, कीं, मोठ्या भोजनसमारंभाच्या तयारींत तुमचें चित्त गढून गेलें आहे. उद्यां तुमच्या घरीं लग्नसमारंभ होणा आहे, किंवा मोठा यज्ञ होणार आहे, किंवा मेजवानी देणार आहां?''

तो ह्मणाला ''तुह्मी यांपैकीं कांही नाहीं. उद्यां मी माझ्या घरी बुध्दाला आणि त्याच्या भिक्षुसंघाला आमंत्रण केलें आहे.''

''बुध्द ह्मणतां!'' अनाथपिंडिक मोठ्यानें उध्दारला.

''होय बुध्द ह्मणतो.'' अनाथपिंडिकाच्या मेहुण्यानें उत्तर दिलें.

अनाथपिंडिक ह्मणाला ''बुध्द हा शब्ददेखील या लोकीं दुर्लभ आहे! या वेळीं त्या भगवंताचें दर्शन घेणें शक्य आहे काय?''

अनाथपिंडिकाचा मेहुणा ह्मणाला ''बुध्दाच्या दर्शनाला जावयाची ही वेळ नव्हे. उद्यां सकाळीं योग्य वेळीं तूं त्या भगवंताची भेट घे.''

अनाथपिंडिकाचा मेहुणा ह्मणाला ''बुध्दाच्या दर्शनाला जावयाची ही वेळ तूं त्या भगवंताची भेट घे''

अनाथपिंडिकाला त्या रात्रीं निद्रा कशी ती आली नाहीं. पहांट

होईपर्यंत तो बिछान्यावरून सकाळ आली असें समजून तीनदां उठला. शेवटीं अरूणोदयाच्या पूर्वी उठून तो सीतवनाकडे चालता झाला. वाटेंत एकाएकीं मोठा अंधकार उध्दवला. अनाथपिंडिक घाबरून मागें सरण्याच्या बेतांत होता; इतक्यांत त्या प्रदेशांत रहाणारा सीवक नांवाचा यक्ष त्याला ह्मणाला ''हे गृहपति, सीतवनाच्या बाजूला तुझें प्रत्येक पाऊल मोठें पुण्य प्रसवत आहे. ह्मणून मागें न सरतां पुढें हो!''

हें यक्षाचें भाषण ऐकून अनाथपिंडिकाच्या मनाला धीर आला आणि त्याच्या दृष्टीसमोर आलेला अंधकार नष्ट झाला. अनाथपिंडिक सीतवनामध्यें पोहोंचला त्या वेळीं बुध्दगुरू पहांटेला उठून मोकळ्या जागेंत चंक्रमण करीत होता. अनाथपिंडिकाला पाहून तो एका आसनावर जाऊन बसला आणि 'सुदत्ता, इकडे ये,' असें ह्मणाला.

हे ऐकून अनाथपिंडिक चकित झाला. कांकीं, जरीं त्याचें खरें नाव सुदत्त हें होतें, तरी त्याच्या आप्तइष्टांशिवाय इतरांनां तें क्वचित्च माहीत होतें. 'अनाथपिंडिक' या टोपणनांवानेंच तो प्रसिद्ध होता.

अनाथपिंडिक बुध्दाला नमस्कार करून एका बाजूला बसला आणि ह्मणाला ''भगवन्, आपण रात्रीं सुखानें झोंपलांत ना?''

बुद्ध ह्मणाला ''जो ब्राह्मण कामसुखांत बद्ध होत नाहीं, ज्याच्या सर्व तृष्णा नष्ट झाल्या आहेत, व येणेंकरून ज्याचें मन शांत झालें आहे, तो सर्व काळ सुखानें झोंतो.''

तद्नंतर बुद्धानें दानापासून फायदे, शीलापासून फायदे, स्वर्गलोकांतील सुख, कामोपभोगांत दोष आणि एकांतवासापासून फायदे इत्यादि गोष्टींसंबंधानें उपदेश केला, व जेव्हां अनाथपिंडिकाचें चित्त मृदु, मुदित आणि प्रसन्न झालेलें पाहिलें, तेव्हां त्याला त्यानें चार आर्य सत्यांचा उपदेश केला.

तो ऐकून बौद्धधर्माच्या सत्यतेबद्दल अनाथपिंडिकाची खात्री झाली. तो बुध्दाला ह्मणाला ''भगवन्! हा आपला धर्म अत्यंत सुंदर आहे. एकाद्या मनुष्यानें झांकलेली वस्तु उघड करून दाखवावी, किंवा डोळसांनां अंधारांत दिसावें ह्मणून मशाल धरावी, त्याप्रमाणें आपण आपल्या धर्माचें उत्तम

स्पष्टीकरण केलें आहे. मी आजपासून माझ्या कुडींत प्राण असेपर्यंत आपणाला, आपल्या धर्माला आणि भिक्षुसंघाला शरण जात आहें. आपला उपासक आहें, या नात्यानें माझा आपण अंगीकार करावा. आतां उद्यां आपण भिक्षुसंघासहवर्तमान माझ्या अन्नदानाचें ग्रहण करावें.''

बुद्धानें कांहींएक न बोलतांच आमंत्रण पत्करल्याचें चिन्ह दाखविलें. तें जाणून अनाथपिंडिक आसनावरून उठला आणि बुध्दाला वंदन करून आपल्या मेहुण्याच्या घरीं गेला.

अनाथपिंडिकाचा मेहुणा (हा राजगृहक श्रेष्ठी या नांवानें प्रसिध्द होता.) अनाथपिंडिकानें बुध्दाला आमंत्रण दिल्याचें वर्तमान ऐकून त्याला ह्मणाला ''तुह्मी या शहरांत परकी आहां, तेव्हां तुमच्यातर्फे उद्यांची सर्व सिद्धता मीच करितों.''

दुसरेहि पुष्कळ शेटसावकार अनाथपिंडिकाचे मित्र होते. त्यांनीं देखील अनाथपिंडिकाला असाच आग्रह केला. खुद्द बिंबिसारराजानें अनाथपिंडिकाला बोलावून सांगितलें, कीं, ''तुह्मी आमच्या शहरांत पाहुणे आहां, तेव्हां तुमच्यातर्फे उद्यां बुध्दाला आणि भिक्षुसंघाला आह्मीच अन्नदान देतों.''

परंतु अनाथपिंडिकानें मोठ्या नम्रपणें कोणाचीहि मदत न स्वीकारतां मेहुण्याच्या घरीं आपल्या नोकरचाकरांच्या साहय्यानें सर्व तयारी स्वतः केली, व दुसऱ्या दिवशीं मध्यान्हकालापूर्वी बुद्धाला आणि भिक्षुसंघाला बोलावून आणून आपल्या हातानें त्यांचें संतर्पण केलें.

भोजनोत्तर बुद्धाजवळ बुद्धाजवळ एका कमी दर्ज्याच्या आसनावर बसून अनाथपिंडिक ह्मणाला ''भवगन्, यंदांच्या चातुर्मास्यासाठीं आपण श्रावस्तीला यावें अशी माझी विनंति आहे.''

बुद्धा ह्मणाला ''हे गृहपति, तथागताला एकांतवासाचीच आवड असते.''

अनाथपिंडिक ह्मणाला ''होय, तें मी जाणत आहें!''

अनाथपिंडिक राजगृह आणि श्रावस्ति या दोन शरांच्या दरम्यान वाटेंतील गांवांत आणि लहानसान शहरांत पुष्कळ मित्र होते. श्रावस्तीला

जात असतां ज्याज्या ठिकाणी त्यानें मुक्काम केला, त्यात्या ठिकाणीं आपल्या मित्रांनां बुद्धासाठीं रम्य प्रदेशांत विहार वगैरे बांधून बुद्धाच्या रहाण्याची सोय करण्याविषयीं त्यानें उपदेश केला; व श्रावस्तीला पोहोंचल्यावर बुद्धाला रहाण्याला योग्य स्थल तो पाहूं लागला.

कोसलदेशाच्या राजवंशांतील जेत नांवाच्या राजकुमाराचें श्रावस्तीजवळ एक रमणीय उद्यान होतें. अनाथपिंडिकाला या उद्यानाशिवाय दुसरी प्रशस्त जागा श्रावस्तीच्या आसपास सांपडली नाहीं. तेव्हां तो जेत राजकुमाराजवळ जाऊन त्याला ह्मणाला ''बुध्द आमच्या शहरांत चातुर्मास्यासाठीं येणार आहेत. त्यांनां रहाण्याकरितां शहराच्या आसपास मीं पुष्कळ जागा पाहिल्या; परंतु आपल्या उद्यानाशिवाय मला एकहि जागा पसंत पडली नाहीं. तेव्हां आपण मेहरबानी करून विहार बांधण्यासाठीं मला आपलें उद्यान द्यावें.''

जेत ह्मणाला ''हे गृहपति, सोन्याचें नाणें माझ्या उद्यानांत पसरलें, तर तेवढी किंमत घेऊन मी तुह्माला माझें उद्यान देईन; एरवीं तें तुह्माला मिळण्यासारखें नाहीं.''

जेताच्या ह्मणण्याचा रोख असा होता, कीं, कितीहि किंमत दिली, तरी आपलें उद्यान विकण्याचा आपला उद्देश नाहीं; पण अनाथपिंडिकानें त्याचा शब्दशः अर्थ केला.

आपल्या घरीं येऊन दोनचार सोन्याच्या नाण्यांच्या गाड्या भरून अनाथपिंडिकानें आपल्या नोकरांना जेताच्या उद्यानांत न्यावयाला लाविल्या व तें नाणें तेथें जमिनीवर पसरावयाला आरंभ केला. हें वर्तमान जेताला समजलें, तेव्हां तो तेथें आला व अनाथपिंडिकाला ह्मणाला ''तुह्मीं कितीहि द्रव्य दिलें, तरी हें उद्यान मी तुह्माला देणार नाहीं!''

अनाथपिंडिक ह्मणाला ''आपण राजकुलामध्यें जन्मलां आहां. तेव्हां आपलें वचन माघारें घेणें आपणाला लज्जास्पद होईल.''

जेत ह्मणाला ''माझ्या ह्मणण्याचा उद्देश हा होता, की, जर तुह्मीं सोनें पसरलें, तर देखील तेवढी किंमत घेऊन माझें उद्यान विकण्यात मी तयार नाही!''

त्या दोघांचाहि विवाद आपसांमध्ये तुटण्यासारखा नव्हता. तेव्हां त्यांनीं आपलें ह्मणणें श्रावस्तींतील न्यायाधीशमंडलासमोर मांडलें. सर्व न्यायाधीशांनीं एकमतानें अनाथपिंडिकाच्याच तर्फे न्याय दिला. राजकुमारनिं ज्याअर्थी सोन्याचें नाणें जमिनीवार पसरलें तर तेवढी जमीन मिळेल असें ह्मटलें, त्याअर्थी त्यानें आपल्या जमिनीची किंमत ठरविली असें ह्मटलें पाहिजे, व ही किंमत घेऊन त्यानें आपलें उद्यान अनाथपिंडिकाला दिलें पाहिजे, असा त्या न्यायाधीशांनी निवाडा केला.

इकडे सोन्याचें नाणें जेतवनामध्यें पसरण्याचें काम अनाथपिंडिकाच्या विश्वासु नोकरांनी पुढें चालविलेंच होतें. त्यांनीं बराच भाग नाण्यानें आच्छादिला. इतक्यांत जेत अनाथपिंडिकासह तेथें आला, आणि अनाथपिंडिकाला ह्मणाला ''एवढीच जमीन मी तुह्माला विकत देतों, राहिलेली मी विहार बांधण्यासाठीं दान देतों.''

अनाथपिंडिकानें असा विचार केला कीं, जेतासारख्या राजकुमाराची बौद्धधर्माच्या प्रसाराला फार मदत होणार आहे. तेव्हां त्यांच्या या देणगीचा अव्हेर करतां कामा नयें. तो जेताला ह्मणाला ''ठीक आहे. या राहिलेल्या जमीनीमध्यें आपणाला बध्दासाठीं जें काहीं करावयाचें असेल तें खुशाल करा.''

जेतानें राहिलेल्या जागेंत एक कोठडी बांधिली व अनाथपिंडिकानें पुष्कळ कोठड्या, पुष्कळ चंक्रमण, पुष्कळ भोजनशाळा, पुष्कळ विहार, व पुष्कळ स्नानशाळा बांधिल्या.

बुद्धगुरू राजगृहांतून निघून भिक्षुसंघासह संचार करीतकरीत श्रावस्तीला आला. तेथें तो जेतवनामध्यें अनाथपिंडिकाच्या आसमांत रहात असतां अनाथपिंडिकानें येऊन त्याला भिक्षुसंघासहवर्तमान आपल्या घरीं आमंत्रण केलें.

दुसऱ्या दिवशीं स्वतः बुद्धाला आणि भिक्षुसंघाला संतृप्त केल्यावर अनाथपिंडिकानें जेतवनविहाराची पुढें व्यवस्था काय करावी, असा बुध्दाला प्रश्न केला. बुद्ध ह्मणाला ''हे गृहपति, हा विहार तूं आगतानागत भिक्षुसंघाला दान दें.''

अनाथपिंडिकानें जेतवनाचें यथाविधि दान केलें; तेव्हां बुद्धान त्याचें याप्रमाणें अभिनंदन केलेंः— ''विहारदान हे सर्वात श्रेष्ठ आहे. कांकीं, त्याच्यायोगें भिक्षुच्या ध्यानाला पाऊस, पाणी, ऊन हिंसक पशु, वादळ इत्यादिकांपासून अंतराय होत नाहीं. ह्मणून सुज्ञ उपासकानें यथाशक्ति विहार करवून तेथें विव्दान् भिक्षूंनां राहण्याची सोय करावी, व त्यांना यथाशक्ति अन्नदान द्यावें.''

विशाखा मिगारमाता

श्रावस्तीपासून सात योजनांच्या अंतरावर साकेत नांवाचें एक मोठें शहर वसलें होतें. तें ज्यानें वसविलें, त्या धनंजयश्रेष्ठीची त्या काळच्या नवकोटनारायणांमध्यें गणना होत असें. त्या विशाखा नांवाची त्याला एक अत्यंत सुस्वरूप कन्या होती. ती वयांत आल्यावर श्रावस्ति येथील मिगारश्रेष्ठीच्या पूर्णवर्धन नांवाच्या पुत्राशीं तिचा विवाह ठरला. साकेत व श्रावस्ति या दोन्ही शहरांमध्यें उभय पक्षांकडून हा विवाहसमारंभ मोठ्या थाटानें पार पडला.

विवाहविधि आटोपून धनंजयश्रेष्ठी आपल्या कन्येबरोबर श्रावस्तीला आला, तेव्हां त्यानें आपल्या ज्ञातींतील आठ कुलीन गृहस्थांनां बोलावून आणून व्याह्मांसमोर असें सांगितलें, कीं, ''जर माझ्या मुलीचा कांहीं दोष दिसून आला, तर त्याची तुह्मीं नीट चौकशी करावी.''

धनंजयश्रेष्ठी मुलीला सासरीं ठेवून साकेताला गेल्यावर एके दिवशीं मिगारश्रेष्ठीनें निर्ग्रंथ श्रमणांला (नग्न संन्याशांला) आपल्या घरीं मुलाच्या लग्नासमारंभानिमित्त भोजनाला आमंत्रण केलें. (मिगरीश्रेष्ठी निंर्ग्रथांचा उपासक होता.) त्यांच्यासाठीं त्यानें पाणी न घालतां दुधाची खीर करविली होती. निंर्ग्रथ येऊन आपापल्या आसनावर बसल्यावर मिगारश्ररेष्ठीनें स्वतः आदरातिथ्य करून त्यांचें संतर्पण केलें, व त्यांचें भोजन झाल्यावर आपल्या सुनेला निरोप पाठविला, कीं, आपल्या घरीं अर्हन्त आले आहेत, त्यांनां नमस्कार करण्यास यावें.

अर्हन्त हा शब्द कानीं पडतांच विशाखेला फार आनंद झाला. कारण, लहानपणापासून ती बुद्धाची उपसिका होती, व बुद्ध आणि बौद्धभिक्षु यांशिवास इतरांना अर्हन्त ह्मणतात, हें तिला माहीत नव्हतें. घाईघाईनें पोषाख करून ती अंतःपुरांतून आपला सासरा व त्याचे ते अर्हन्त ज्या दिवाणखान्यांत बसले होते, तेथें गेली. पण त्या नग्न श्रमणांला पाहून ती फारच कंटाळली व आपल्या सासऱ्याला ह्मणाली ''मला आपण येथें कशाला

बोलाविलें? असले नागडे उघडे लोक कधीं अर्हन्त होत असतात कायय? अशा निर्लज्जांना आह्मी अर्हेत ह्मणत नसतों!'' असे उद्गार काढून विशाखा तेथून चालती झाली.

इकडे त्या श्रमणांला या नववधूनें आपला अपमान केल्याबद्दल अतिशय वाईट वाटलें, व ते एकदम मिगारश्रेष्ठीला ह्मणाले ''हे गृहपति, ही अवदसा तूं कोठून आणलीस? जणूं काय तुझ्या मुलाला जगामध्यें दुसरी मुलगीमिळालीच नसती!''

मिगार ह्मणाला ''अजून मिचा पोरस्वभाव आहे. आतां हळुहळु सुधारत जाईल. तिच्या या उद्धट आचरणाबद्दल आपण तिला क्षमा करावी.''

मिगारानें कशीबशी निर्ग्रंथांची समजून घालून त्यांनां वाटेला लावलें, व स्वतः दुधाच्या खिरीनें भरलेलें ताट घेऊन तो जेवावयाला बसला. विशाखा त्याला पंख्यानें वारा घालीत एका बाजूला भी राहिली होती. इतक्यांत दरवाज्यांत एका बौद्धभिक्षु येऊन उभा राहिला. मिगार बसलेल्या ठिकाणाहून त्या भिक्षूला पहात होता. तथापि त्याच्याकडे पूर्ण दुर्लक्ष्य करून तो आपल्या भोजनांत गढून गेला होता. तेव्हां विशाखा तेथूनच त्या भिक्षूला ह्मणाली ''आर्य, माझा सासरा जुनेंपुराणें खात आहे. तुह्मी येथें तिष्ठत न रहातां पुढें व्हा!''

विशाखेचे हे शब्द कानी पडतांच मिगार अतिशय संतापानें आपल्या नोकरांना ह्मणाला ''हा पायस येथून घेऊन जा, व या पोरीला माझ्या घरांतून याच क्षणीं हांकून द्या. ही इतकी उन्मत्त झाली आहे, कीं, माझ्यासमोर माझा उपमर्द करण्याला हिला लाज वाटत नाहीं!''

मिगार जरी फार संतापला होता, तरी विशाखेच्या अंगाला हात लावण्याची त्याला किंवा त्याच्या नोकरांनां छाली झाली नाहीं. ती शांतपणें आपल्या सासऱ्याला ह्मणाली ''आपण माझ्यावर इतके रागावूं नये. मी कांहीं विकत आणलेली दासी नाहीं. मी आपल्यासारख्याच थोर कुलांत जन्मलेली आहें. प्रथमतः माझा अपराध माझ्या पदरांत घाला, आणि मग मला येथून जावयाला सांगा. माझ्यावर विनाकरण तोहमत येऊं नये ह्मणून माझ्या पित्यानें येथें आठ कुलीन गृहस्थांना माझ्या अपराधाची नीट चौकशी

करण्याविषयीं सांगून ठेविलें आहे. तेव्हां त्यांच्यासमोर माझा दोष काय आहे, हें मला सांगा. जर माझा अपराध आहे असें ठरलें, तर मी खुषीनें येथून निघून जाईन.''

हे सुनेचें स्पष्ट बोलणें ऐकून मिगाराचा भडकलेला राग जरा दबला गेला. त्यानें त्या आठ कुलीन गृहस्थांनां ताबडतोब बोलावून आणलें, आणि आपल्या सुनेचा गुन्हा त्यांनां सांगून तो ह्मणाला ''हिला माझ्या घरांतून आजच्या आज घालवून द्या.''

हे गृहस्थ ह्मणाले ''काय गे विशाखे! टापला सासरा घाणेरडें अन्न खातो असें तूं ह्मटलें आहेस काय?''

विशाखा ह्मणाली ''माझा सासरा जुन्या पुण्यावर निर्वाह करतो, नवीन पुण्य संपादन करीत नाहीं, असा माझा ह्मणण्याचा अर्थ होता, ह्मणून मी तो जुनें खातो असें ह्मटलें आहे.''

ते गृहस्थ मिगाराला ह्मणाले ''हें ह्मणणें मोठ्या शहाणपणाचें दिसतें. एवढ्यानें विशाखेला घरांतून हांकून देणें तुह्माला उचित नाहीं.''

आणखीहि विशाखेचे कांही बारीकसारीक दोष मिगारानें त्या गृहस्थांना सांगितले, पण चौकशीअंतीं ते दोष नसून मिगाराचा केवळ गैरसमज झाला होता असें दिसून आलें. तेव्हां मिगार ह्मणाला ''पण इचा बाप जेव्हां येथें आला तेव्हां आमच्यससमोर त्यानें हिला दहा नियमे शिकविले. आह्मांला तर ते निवळ वेडेपणाचे दिसतात. मग हिला त्यांचा अर्थ काय समजला असेल तो असो!''

ते गृहस्थ ह्मणाले ''काय गे विशाखे! धनंजयश्रेष्ठीनें तुला कोणते नियम शिकविले, व त्यांचा अर्थ काय?''

विशाख ह्मणाली ''आंतली आग बाहेर नेऊं नये, हा पहिला नियम माझ्या पित्यानें मला शिकविला. त्याचा अर्थ असा आहे, कीं, घरांत कांहीं भांडणें वगैर झालीं, तर त्यांची वार्ता बाहेर पसरूं नये. बाहेरची आग आंत आणूं नये, हा दुसरा नियम. ह्मणजे शेजारी–पाजारीख सासूसास-यांचे किंवा जावानणदांचे अवगुण बोलत असले, तर तें वर्तमान आणून घरांत सोडूं नये. देणारालाच द्यावें, हा तिसरा नियम; व न देणाराला देऊं नये, हा चवथा

नियम. यांचा अर्थ हा, कीं, जो कोणी घरांतील वस्तु उसनी दिली असतां परत करतो त्यालाच ती द्यावी; जो परत देत नाहीं त्याला देऊं नये. देणारा किंवा न देणारा असला तरी द्यावें, हा पांचवा नियम आपल्या जवळच्या आप्ताला लागू आहे. ह्मणजे आपल्या आप्तवर्गांत कोणी दरिद्री असला, व उसना घेतला जिन्नस परत करण्याचें सामर्थ्य त्याच्या अंगी नसलें, तरी देखील तो त्याला द्यावा. सुखानें बसावें हा सहावा नियम, व सुखानें जेवावें हा सातवा नियम, आणि सुखानें निजावें हा आठवा नियम. यांचा अर्थ असा, कीं, वडील माणसें ज्या ठिकाणीं वारंवार येतात त्या ठिकाणीं बसूं नये; त्यांचें जेवण होण्यापूर्वी आपण जेवूं नये; नोकरांचाकरांचा समाचार घेऊन मग जेवावें; वडील माणसें निजण्यापूर्वी आपण निजूं नये, त्यांची व्यवस्था लावून मग निजावें. अग्नीची पूजा करावी, हा नववा नियम. पतिव्रता स्त्रीला पति अग्नीसारखा पूज्य असावा, व ब्राह्मण जसे अग्नीची परिचर्या करतात तशी तिनें आपल्या पतीची शुश्रूषा करावी, हा या नियमाचा अर्थ आहे. गृहदेवतांची पूजा करावी, हा दहावा नियम, ह्मणजे सासूसासरे इत्यादि वडील माणसांनां गृहदेवता समजून त्यांची सेवा करावी.''

विशाखेनें आपल्या पित्यानें घालून दिलेल्या दहा नियमांची याप्रमाणें फोड केल्यावर त्या आठ कुलीन गृहस्थांनी तिची फारच स्तुति केली, व ते मिगारश्रेष्ठीला ह्मणाले ''आपण रागाच्या भरांत या शहाण्या मुलीला घरांतून घालवून देण्यास तयार झालां आहां; पण आह्मी ही आपल्या घरीं लक्ष्मीच आहे असें समजतों.''

मिगारानें आपली चूक कबून केली व विशाखेची क्षमा मागितली.

विशाखा ह्मणाली ''आपण वडीलच आहांत, तेव्हां क्षमा करण्यासारखा आपला मोठा अपराध आहे असें मी समजत नाहीं; परंतु एका गोष्टीमध्यें मात्र आपलें व माझें पटावयाचें नाहीं, असें वाटतें. मी बुद्धाची उपासिका आहें व आपण निर्ग्रंथांचे उपासक आहांत. तेव्हां बौध्दभिक्षु आमच्या घरीं भिक्षेला आले असतां ते आपणाला खपावयाचें नाहीं, व निर्ग्रंथ आले असतां त्यांनां मी नमस्कार करणार नाहीं. या बाबतींत कांहीं तडजोड निघाल्याशिवाय माझ्या येथें राहण्यानें आपणाला किंवा मला सुख होणार नाहीं.''

मिगार ह्मणाला ''तुझ्या इच्छेप्रमाणें वागण्याला कोणतीच हरकत नाहीं. माझ्या घरीं पुष्कळ धनदौलत आहे. बौद्धभिक्षूंनां आमंत्रण करून तूं जेवावयाला घातलेंस तर त्याच्यायोगें मी दरिद्री होईन, असा प्रकार मुळींच नाहीं. मी माझ्या निर्ग्रंथांना अन्नदान करीन, व तूं यथावकाश बौद्धभिक्षूंनां अन्नवस्त्रादिकांचें दान कर.''

विशाखेनें दुसऱ्याच दिवशीं बुद्धाला आणि भिक्षुसंघाला निमंत्रण केलें. हें वर्तमान निर्ग्रंथांना समजतांच त्यांनीं ताबडतोब मिगारश्रेष्ठीला गांठलें, आणि या गोष्टीचा खुलासा विचारला.

मिगार ह्मणाला ''माझी सून कांहीं लहानसान कुळांतली नव्हे. तिला दासीप्रमाणें वागवितां येणें शक्य नाहीं. माझ्या घरांत जर सुख नांदावयाचें असेल, तर माझ्या सुनेला मीं योग्य स्वातंत्र्य दिलेंच पाहिजे.''

निर्ग्रंथ ह्मणाले ''बौद्धभिक्षूंनां तुझ्या घरीं यावयाला जर तुला मनाई करतां येण्यासारखी नसेल, तर निदान तूं त्यांच्या दर्शनाला तरी जाऊं नकोस. बुद्ध मोठा मायावी आहे; तो लोकांना मोह पाडून आपल्या पंथांत ओढून नेतो, असे आह्मीं ऐकिलें आहे. तेव्हां विशाखेनें कितीही आग्रह केला तरी तूं त्याच्या दर्शनाला जाऊं नकोस.''

मिगारानें बध्दाची किंवा भिक्षूंची भेट न घेण्याचें अभिवचन दिल्यावर निर्ग्रंथ आपलया आश्रमांत गेले.

दुसऱ्या दिवशीं विशाखेनें जेवणाची सर्व तयारी करून बुद्धाला आणि भिक्षूंनां बोलावून मोठ्या आदरानें त्यांचें संतर्पण केलें. भोजनोत्तर बुद्धगुरूला विशाखेनें आपणाला व आपल्या घरांतील मंडळीला धर्मोपदेश करावयाची विनंति केली. पण हा उपदेश ऐकावयाला मिगार येईना. विशाखेनें फारच आग्रह केल्यावर पडद्याच्या आड बसून धर्मोपदेश ऐकण्याला तो कबूल झाला. बुद्धाचें तोंड मात्र त्याला पहावयाचें नव्हतें! विशाखेनें एका बाजूला पडदा बांधून आपल्या सासऱ्याला बसण्याची सोय केली.

सर्व मंडळी जमल्यावर बुद्धानें आपल्या अमृततुल्य वाणीनें त्यांनां उपदेश कला. दान, शील, भावना इत्यादि गोष्टींसंबंधानें बुध्दानें केलेला बोध ऐकून मिकारश्रेष्ठीचा कंठ दाटून आला. असा थोर सत्पुरूष आपणापाशीं

असतां आपण मूर्खपणानें त्याचें दर्शन घेण्याला तयार नाहीं याचा त्याला अत्यंत पश्चात्ताप झाला, व एकदम पडदा दूर सारून धांवत येऊन त्यानें बुद्धाच्या पायांवर डोकें ठेविलें. तो ह्मणाला ''भगवन्! माझ्या अपराधांची क्षमा करा. आजपासून मी आपला उपासक झालों आहें. या बाबतींत विशाखा मला मातेसमान आहे. ती जर माझ्या घरीं आली नसती, तर आपली अमृतवाणी माझ्या कानीं पडली नसती. ह्मणून आजपासून तिला मी माझी आईच ह्मणत जाईन.''

तेव्हांपासून विशाखेला मिगारमाता हें नांव पडलें. श्रावस्तींतील बहुतेक लोक मिगारमाता या नांवानेंच तिला ओळखीत असते. तिनें बुद्धाला, व भिक्षुसंघाला रहाण्यासाठीं पूर्वाराम नांवाच्या उद्यानामध्यें एक प्रासाद बांधला होता. त्याला 'मिगारमातेचा प्रासाद' असें ह्मणत असत. श्रावस्तीमध्यें विशाखेच्या शहाणपणाची आणि नीतिमत्तेची कीर्ति तेव्हांच पसरली; आणि रावापासून रंकापर्यंत तिचा बहुमान होऊं लागला. मंगलकार्यांत आणि उत्सवांत विशाखेला पहिल्यानें आमंत्रण देण्याची वहिवाट पडली. श्रावस्तींतील बोद्ध उपासिकांत ती प्रमुख होती. आगन्तुक व आजारी भिक्षूंच्या सोईकडे ती फार लक्ष्य पुरवीत असे.

देवदत्त

शाक्यांचें राज्य महाजनसत्ताक होतें. निरनिराळ्या गांवच्या महाजन लोकांनां राजे असें ह्मणत असत. अशाप्रकारचे सरासरीं सातशें राजे शाक्यांच्या राज्यांत होते. ते आपसांमध्यें एक अध्यक्ष निवडीत असत, व त्याला महाराजा असें ह्मणत. या महाराजाच्या हातीं अंतर्गत व्यवस्थेसंबंधानें कांहीं अधिकार असत; परंतु परराष्ट्रांशीं लढाई करणें किंवा तह करणें हें काम महाजनमंडळ बहुमतानें करीत असे. शाक्यराजाच्या सभागृहाला 'संथागार' असें ह्मणत असत. याच धर्तीवर चाललेलीं आणखीहि कांहीं राज्यें बुद्धकालीं मध्यदेशांत होतीं.

एका वेळीं शाक्यांचें अध्यक्षस्थान भद्दिय नांवाच्या तरूण शाक्याला मिळालें होतें. त्या वेळीं शाक्यराजांच्या कुळांतील बऱ्याच तरूणांनीं बुद्धाच्या भिक्षुसंघांत प्रवेश केला; परंतु महानाम शाक्याच्या कुळांतील कोणीच भिक्षु झाला नव्हता. तेव्हां तो आपला धाकटा भाऊ अनुरूद्ध याला ह्मणाला ''सिद्धार्थानें बुद्ध होऊन सद्धर्माची पताका जिकडे तिकडे फडकाविली आहे, व त्यायोगें शाक्यकुलाची मोठीच कीर्ति झाली आहे. आजला इतर देशांतील थोर कुळांतील लोक भिक्षु होऊन शाक्यपुत्रीय श्रमण ह्मणवून घेण्यांत धन्यता मानीत आहेत; पण आमच्याच शाक्यांपैकीं कांहीं थोडी मंडळी तथागताच्या धर्माची उपेक्षा करीत आहे, हें आह्मांला उचित नाहीं. आतां आमच्या कुळांत आह्मी दोघेच कायते भिक्षु होण्याला योग्य आहों. जर प्रपंचाचा भार तूं आपल्या शिरावर घ्यावयाला तयार असशील, तर मी भिक्षु होऊन बौद्धधर्माचा प्रसार करीन.''

अनुरूद्धाला प्रपंचाच्या भानगडी काय होत्या, हें मुळींच माहीत नव्हतें. लहानपणींच वडील वारल्यामुळें आईनें त्याचे फार लाड केले, आणि त्याला व्यावहारिक शिक्षण जसें मिळावयाला पाहिजे होतें तसें मिळालें नाहीं. त्यानें आपल्या वडील भावाला प्रपंचाच्या भानगडी काय आहेत, असा प्रश्न केल्यावर महानामानें त्याला सर्व सविस्तर माहिती सांगितली, व तो ह्मणाला

''शीत आणि उष्ण, ऊन आणि वारा यांची परवा न करितां गृहस्थानें आपल्या कामांत दक्ष असलें पाहिजे. जो गृहस्थ विषयसुखाच्या नादीं लागून आपल्या गृहकृत्याची उपेक्षा करील त्यावर दारिद्र्यपंकांत लोळण्याची पाळी आल्यावांचून रहाणार नाहीं.''

अनुरूद्ध ह्मणाला ''माझ्यानें या भानगडी व्हावयाच्या नाहींत. लहानपणापासून मी कधींहि शेतांत गेलों नाहीं. तेव्हां शेत पेरतात कसें आणि तें कापतात कसें, हें देखील मला माहीत नाहीं. घोड्यावर बसणें, शिकार खेळणें किंवा तिरंदाजी करणें हीं कामें सोडून इतर कामांत मीं कधींहि मन घातलें नाहीं, व यापुढें माझ्यानें घरगुती कामें होतील असें मला वाटत नाहीं. असलीं कामें करण्यापेक्षां भिक्षु होणेंच मला अधिक इष्ट वाटतें.''

अनुरूद्धाचा भिक्षु होण्याचा बेत—नव्हे निश्चय—ठरला. पण त्याला त्याच्या आईची परवानगी मिळेना. अनुरूद्धानें जेव्हां अतिशय हट्ट धरला, तेव्हां ती त्याला ह्मणाली ''सध्यांचा आमचा महाराजा भद्दिय हा तुझा बालमित्र आहे. जर तो तुझ्याबरोबर भिक्षु होण्याला तयार असेल, तर मी तुला परवानगी देतें.''

भद्दिय एवढा मोठा अधिकार सोडून भिक्षु होणार नाहीं अशी अनुरूद्धाच्या आईला खात्री वाटत होती. ह्मणून तिनें आपल्या मुलाची समजूत घालण्यासाठीं ही युक्ति योजिली.

अनुरूद्ध भद्दियाजवळ जाऊन ह्मणाला ''मित्रा, बुद्धाच्या भिक्षुसंघांत प्रवेश करण्याची मला उत्कंठा लागली आहे. पण माझ्या आईची मला परवानगी मिळत नाहीं. तूं जर माझ्या बरोबर भिक्षु होशील, तरच माझी आई मला परवानगी द्यावयाला तयार आहे.''

भद्दिय ह्मणाला ''अनुरूद्धा! तूं आणखी सात वर्षे थांब. या अवधींत मला ज्या कांहीं आमच्या राज्यांत सुधारणा करणें इष्ट वाटत आहे, त्या करून मी मोकळा होतो. मग आपण दोघेही भिक्षु होऊं.''

परंतु अनुरूद्धाला सात दिवस देखील सात वर्षोंसारखे वाटत होते, इतका तो भिक्षु होण्यासाठीं उत्सुक झाला होता. त्याच्या अत्यंत आग्रहामुळें एका आठवड्याच्या आंत राज्यकारभार दुसऱ्यावर सोंपवून भिक्षु होण्याला

भद्दिय कबूल झाला. एका आठवड्यनंतर राज्यकारभार आपल्या बंधूंवर सोंपवून तो कोणाला नकळत अनुरूद्धाबरोबर बुद्धाच्या भेटीला जाण्यास तयार झाला.

त्या वेळीं बुद्धगुरू अनुप्रिया नांवाच्या मल्लाच्या गांवीं रहात होता. भद्दिय आपल्या सेनेसहवर्तमान उद्यानांत गेला असतां सेनेला तेथेंच ठेवून अनुरूद्धाबरोबर अनुप्रियेला जाण्याचा त्यानें बेत केला. आनंद, भृगु, किंबिल, देवदत्त आणि उपालि न्हावी, हे पांचजण भद्दियाबरोबर जावयाला तयार झाले. काहीं अंतरावर गेल्यावर त्या शाक्यकुमारांनीं आपले अलंकार एका उत्तरीय वस्त्रांत बांधून उपालीच्या स्वाधीन केले आणि ते त्याला ह्मणालें ''उपालि, आतां यापुढें तूं आमच्याबरोबर येऊं नकोस. हे अलंकार विकून सुखानें आपली उपजीविका करं''

डपालीनें विचार केला, कीं, ''जर मी हे अलंकार घेऊन माघारा फिरलों, तर यानेंच भद्दियादिकांचा घात केला, अशा समजुतीनें शाक्य राजे आपणाला फांशीं देतील. तेव्हां घरीं न जातां यांच्याबरोबरच पुढें जाणें चांगलें.'' त्यानें शाक्यकुमारांनीं दिलेले अलंकार एका झाडाला टांगले व 'जो पाहील तो घेऊन जावो' असे उद्गार काढून तो शाक्यकुमारांबरोबर अनुप्रिया गांवाला आला.

भद्दियादिक शाक्यांनीं बुध्दाची भेट घेऊन आपणांला भिक्षुसंघांत घेण्याची विनंति केली व ती बुद्धानें मान्य केल्यावर ते ह्मणाले ''भगवन्, प्रथमतः आमच्या या उपालि न्हाव्याला प्रव्रज्या द्या. तो आमचा हितकर्ता मित्र असून मोठा बुद्धिमान् आहे. त्याला आपण प्रथम भिक्षु केलें ह्मणजे त्याच्यामागून झालेले भिक्षु या नात्यानें आह्मांला त्याला वंदन करावें लागेल, व आह्मी थोर कुलांत जन्मलों याबद्दल आह्मांला गर्व वाटणार नाहीं.''

बुद्धानें त्यांची विनंति मान्य करून प्रथमतः उपालीला प्रव्रज्या दिली. उपली पुढें मोठा विनयघर (विनय ग्रंथांमध्यें कुशल) झाला. अनुरूद्धाला दिव्य दृष्टीचा लाभ झाला. आनंद बुद्धाची शुश्रूषा करणाऱ्या भिक्षूंत प्रमुख झाला. पण देवदत्त लौकिकसिद्धीच्या मागें लागला.

बुद्धगुरू एका कालीं कौशांबी नगरीमध्यें घोषितारामांत रहात होता. तेथें देवदत्ताच्या मनांत असा विकल्प आला कीं, ''मी एखाद्या राजकुमाराला

प्रसन्न करून मोठें नांव मिळवीन.''

तो कौशांबीहून एकाटाच राजगृहाला आला, व तेथें बिंबिसार–राजाच्या अजातशत्रु कुमाराला योगसिद्धीचा चमत्कार दाखवून त्यानें वश केलें. राजगृहाला आल्यावर बुद्धगुरूला असें वर्तमान समजले कीं, ''देवदत्त अजातशत्रूपासून पुष्कळ लाभसत्कार मिळवीत आहे.'' तेव्हां तो ह्मणाला ''भिक्षुहो, देवदत्त खोट्या मार्गाला लागला आहे. केळीचें फळ केळीचा नाश करतें; वेळूचें फळ वेळूचा नाश करतें; आणि लौकिकसिद्धीच्या योगें मिळविलेला लाभ मुर्ख मनुष्याचा नाथ करतो.''

एके दिवशीं बुद्धगुरू मोठ्या सभेंत धर्मोपदेश करीत होता. त्या वेळीं देवदत्त बुद्धाला वंदन करून ह्मणाला ''भगवन्, आतां आपण वृद्ध झालां आहां, तेव्हां भिक्षुसंघाचें नायकत्व माझ्याकडे देऊन आपण शांतपणें कालक्रमणा करावी.''

बुद्धानें ही गोष्ट नाकबूल केली. तो ह्मणाला ''देवदत्ता, सारिपुत्त मोग्गल्लानांसारख्या समर्थ श्रावकांच्या हातीं देखील मीं भिक्षुसंघाचा भार सोंपविला नाहीं. तू तर या कामीं अगदींच नालायक आहेस; तेव्हां तुला भिक्षुसंघाचा पुढारी कसें करतां येईल?''

बुद्धानें आपणाला पुढारी होण्यास नालायक ठरविलें, याजबद्दल देवदत्ताला अत्यंत विषाद वाटला. आतां बुद्धाचा सूड उगवण्यापलीकडे दुसरा विचार त्याच्या मनामध्यें राहिला नाहीं.

एके दिवशीं अजातशत्रूला भेटून तो त्याला ह्मणाला ''हे राजपुत्र, पूर्वीप्रमाणें आजकालचीं माणसें दीर्घायुषी होत नसतात. कधीं कोणाला मरण येईल, याचा नेम नसतो. तेव्हां बापाच्या पूर्वीच राज्यसुखाचा उपभोग घेतल्यावांचून तुला मरण येण्याचा संभव आहे. ह्मणून मी ह्मणतों, कीं, बिंबिसाराला मारून तूं राजा हो, व बुद्धाला मारून मी बुद्धाला मारून मी बुद्ध होतों.''

अजातशत्रूला आपल्या गुरूची ही युक्ति पसंत पडली, व नागवी तलवार हातांत घेऊन तो आपल्या पित्याला मारण्यासाठीं अंतःपुरांत शिरला तेथें बिंबिसाराच्या शिपायांनीं त्याला पकडलें, व आपल्या धन्यासमोर नेऊन

उभें केलें. बिंबिसार ह्मणाला ''मुला, तूं हें अघोर कृत्य करावयाला कां सज्ज झालास?''

अजातशत्रु ह्मणला ''मी राज्य करावयाला उत्सुक झाल्यामुळें आपणावर तलवार उगारावयाला सिद्ध झालों, याची मला क्षमा असावी.''

बिंबिसारराजानें ताबडतोब आपल्या मंत्रिमंडळाला बोलावून आणून त्याच्या समक्ष राज्यकारभार अजातशत्रूच्या हवालीं केला. अजातशत्रूनें कांहीं दिवसानंतर आपल्या पित्याला कैदेंत टाकून उपवासानें ठार मारिलें.

याप्रमाणें अजातशत्रूला राज्याचा संपूर्ण अधिकार मिळाल्यावर देवदत्त त्याला ह्मणाला ''आता तू मला मदत केली पाहिजेस. मारेकऱ्यांनां पाठवून तूं जर बुद्धाचा प्राण घेशील, तर मी लवकरच बुद्ध होईन.''

अजातशत्रूनें देवदत्ताच्या सांगण्याप्रमाणें कांहीं मारेकरी पाठविले; पण बुद्धाला न मारतां उलट ते त्याचे शिष्य होऊन राहिले. तेव्हां देवदत्ताला अतिशय चीड आली व स्वतः बुद्धाला मारण्याचा त्यानें निश्चय केला.

एके दिवशीं बुद्धगुरू गृध्रकूट पर्वताच्या सावलींत चंक्रमण करीत होता. ही संधि पाहून देवदत्त जवळच्या टेंकडीवर चढला, व तेथून त्यानें एक मोठा दगड बुद्धावर ढकलून दिला. खडकावर आदळून वाटेंत त्या दगडाचे तुकडेतुकडे होऊन गेले, पण त्याची एक चीप बुद्धाच्या पायांत शिरली, व मोठी जखम झाली. बुद्धगुरू वरती देवदत्ताकडे पाहून ह्मणाला ''खून करण्याच्या विचारानें, मुर्खा! तूं जें हें दुष्टकृत्य केलेंस, त्याच्यायोगें तूं मोठ्या पापाचा वांटेकरी झाला आहेस!''

बुद्धाला देवदत्तानें जखम केली हें वर्तमान सर्वत्र पसरलें. देवदत्त बुद्धाचा खून करील अशी कांहीं भिक्षूंनां भीति वाटून त्यांनीं बुद्ध ज्या विहारांत रहात होता, त्याच्या आसपास पहारा करण्यास सुरूवात केली. त्यांची हालचाल पाहून व स्वाध्यायाचें पठन ऐकून बुद्ध आनंदाला ह्मणाला ''हे भिक्षु येथें रात्रंदिवस कां फिरत आहेत?''

आनंद ह्मणाला ''भगवन्! देवदत्ताकडून आपल्या जीवाला धक्का पोहोंचूं नये ह्मणून हे येथें पहारा करीत आहेत.''

बुद्धानें आनंदाकडून त्या भिक्षूंनां बोलावून आणिलें, व तो त्यांनां

ह्मणाला ''भिक्षुहो, माझ्या देहाची इतकी काळजी घेण्याचें कांहीं कारण नाहीं. माझ्या शिष्यांपासून माझें रक्षण व्हावें अशी माझी इच्छा नाहीं. तेव्हां तुह्मी येथें पहारा न करतां आपापल्या कामाला लागा.''

बुद्धगुरूच्या पायांची जखम कांहीं कांहीं कालानें बरी झाली, व तो हिंडूं फिरूं लागला. एक दिवशीं राजगृहांत पिंडपाताला जात असतां त्याला पाहून देवदत्त हस्तिशाळेंत गेला, आणि तेथील मुख्य पाहुताला ह्मणाला ''मी राजाचा गुरू आहें, हें तूं जाणत आहेस. तुला मोठ्या योग्यतेला चढविणें किंवा या अधिकारावरून काढून टाकणें माझ्या हातीं आहे. जर तूं मीं सांगितलेलें काम ऐकशील, तर मी राजाकडून तुला मोठें बक्षीस देववीन. पण जर माझ्या कामांत कसून करशील, तर या नोकरीवरून तुला दूर करण्यांत येऊन शिक्षा करण्यांत येईल.''

माहुत ह्मणाला ''गुरूमहाराज, आम्ही आपल्या आज्ञेबाहेर कधीहि जाणार नाहीं. आमच्या महाराजांप्रमाणेंच आपणहि आम्हांला वंद्य आहां.''

देवदत्त ह्मणाला ''तर मग जेव्हां या गल्लींतून बुद्ध जाईल, तेव्हां त्याजवर नालगिरि हत्ती सोड.''

''ठीक आहे!'' माहुतानें उत्तर दिलें.

नलागिरि हत्ती अत्यंत मस्त होता अशी त्याची ख्याति होती. यदाकदाचित् हस्तिशाळेंतून मोकळा झाला, तर तो माणसांनां ठार मारीत असे. बुद्ध त्या रस्त्यानें जात असतां त्याच्या माहुतानें बंधनें तोडून त्याला मोकळें सोडलें. तेव्हां आसपासच्या घरांतून रहाणारी मनुष्यें कोणी घराच्या छपरावर तर कोणी माडीवर जाऊन दडून बसलीं.

नलागिरि हत्ती बुद्धाच्या अंगावर चालत येत असलेला पाहून भिक्षु ह्मणाले ''भगवन्, हा मनुष्यघातक भयंकर नालागिरी हत्ती या बाजूनें येत आहे. तेव्हां आपण लवकर दुसऱ्या बाजूला वळावें.''

पण भिक्षूंच्या बोलण्याकडे लक्ष्य न देतां बुद्धगुरू तसाच पुढें निघाला. तेव्हां आजूबाजूच्या लोकांनी ''अरेरे! बिचाऱ्या या चांगल्या श्रमणाला नालागिरि ठार मारील!'' असे दुःखोद्गार काढिले. बुद्धानें आपल्या विश्वमैत्रीचें एकीकरण करून मनोबलानें तिचा प्रवाह त्या हत्तीवर सोडला.

नालागिरि सोंड खालीं घालून बुद्धाजवळ येऊन उभा राहिला. त्याच्या कुंभस्थळावर हात फिरवून बुद्ध ह्मणाला ''नागानें नागाला मारणें हें चांगलें नाहीं! कांकीं, नागाचा जो घात करतो, त्याला सुगति प्राप्त होत नाहीं. हे कुंजर, तूं मदोन्मत्त होऊन दुर्गतीला जाऊं नकोस. पण असें कृत्य कर, कीं, ज्याच्या योगें सुगतीला जाशील.''

हा उपदेश ऐकून नालागिरीनें शुंडादंडानें बुध्दाची पादधूलि आपल्या मस्तकावर घेतली; आणि पुढीले दोन्ही पाय वांकवून बुद्धाला वंदन करून हस्तिशालेंत तो आपल्या ठिकाणावर जाऊन उभा राहिला!

ही गोष्ट घडल्यावर राजगृहांतील आबालवृध्द ही गाथा गात होतेः—

दंडनेके दमयन्ति अंकुसेहि कसाहि च

अदंण्डेन असत्थेन नागो दंतो महेसिना[2]।

याप्रमाणें देवदत्ताच्या बुद्धाला मारण्याच्या सर्व मसलती फसल्यावर संघामध्यें फूट पाडण्याची त्यानें एक युक्ति योजिली. तो आपला साथीदार समुद्रदत्त भिक्षु याच्याबरोबर बुद्धाजवळ आला, आणि बुध्दाला वंदन करून ह्मणाला ''भगवन्, भिक्षूंनीं ऐहिक विषयांपासून पूर्णपणें अलिप्त रहाण्यासाठीं मीं हे पांच नियम तयार केले आहेत. ते सर्व भिक्षूंनी पाळलेच पाहिजेत अशी आपण आज्ञा करावी. (1) सर्वकाल भिक्षूंनी अरण्यामध्येंच रहावें; (2) आजन्म भिक्षेवरच निर्वाह करावा, कोणीं आमंत्रण केलें असतां त्याच्या घरीं भोजनाला जाऊं नये; (3) यावज्जीव रस्त्यांतील चिंध्या गोळा करून त्यांचीं वस्त्रें तयार करावीं, गृहस्थाकडून वस्त्र घेऊं नये; (4) आजन्म झाडाखालींच रहावें, झोंपडीमध्यें किंवा घरामध्यें राहूं नये; (5) मत्समांसाचें ग्रहण करूं नये. हे पांच नियम पाळण्यांत जो कसून करील, त्याला दोषी ठरवावें.''

बुद्ध ह्मणाला ''या पांच नियमांपासून आध्यात्मिक उन्नतीला कांहीं मदत होईल असें वाटत नाहीं. परंतु ज्याची इच्छा असेल, त्यानें हे पांच नियम खुशाल पाळावें; त्याला माझी हरकत नाहीं.''

बुद्ध संघाला हे नियम सक्तीनें लागू करावयाला तयार नाहीं, या गोष्टीचा राजगृहामध्यें जिकडेतिकडे मोठा बभ्रा करून देवदत्तानें आपल्या मताला कांहीं भिक्षु मिळविले, व तो त्यांनां घेऊन गयेला चालता झाला. तें

वर्तमान ऐकून बुद्धानें सारिपुत्तव मोग्गल्लान यांनां त्या भिक्षूंनां बोध करून परत आणण्यासाठीं गयेला पाठविलें.

देवदत्त आपल्या अनुयायांनां धर्मोपदेश करीत बसला असतांना सारिपुत्त आणि मोग्गल्लान त्या ठिकाणीं पोहोंचले. त्यांना पाहून समुद्रदत्त देवदत्ताला हळूच ह्मणाला ''हे दोघे त्या गौतमाचे दुष्ट अग्रशिष्य आपणांपाशीं येत आहेत त्यांनां आपण येथें थारा देऊं नका.''

देवदत्त ह्मणाला ''आपल्या गुरूला कंटाळून ते मजपाशीं आले असतील. तेव्हां त्यांचा मला योग्य आदरसत्कार केलाच पाहिजे.''

देवदत्तानें सारिपुत्त–मोग्गल्लानांचें फारच आतिथ्य केलें. बराच वेळ उपदेश केल्यानें देवदत्ताला थकवा आला होता. तेव्हां तो सारिपुत्ताला ह्मणाला ''आयुष्मन्, आतां जरी बरीच रात्र झाली आहे, तरी भिक्षुसंघाची धर्मश्रमणाची आस्था कमी झालेली दिसत नाहीं. पण मला बरेच श्रम झाले आहेत. आतां तुझ्या तोंडचे उपदेशपर शब्द माझ्या संघाला ऐकूं दे. मी विश्रांति घेण्यासाठीं जातों.''

देवदत्ताला लवकरच गाढ निद्रा लागली. इकडे सारिपुत्तानें त्या भिक्षूंनां उपदेश करून त्यांचीं मनें वळविलीं. तेव्हां ते सर्वजण सारिपुत्ताबरोबर बुद्धदर्शनाला जाण्यास सिध्द झाले व देवदत्त उठण्यापूर्वी गयेहून राजगृहाला जाण्यासाठीं निघाले.

तेव्हां समुद्रदत्त घाबऱ्याघाबऱ्या देवदत्ताला उठवून ह्मणाला ''या सारिपुत्त–मोग्गल्लानांला येथें येऊं देऊं नका, असें मीं तुह्माला सांगितलें नाहीं काय? आतां ते तुमच्या सर्व अनुयायांना घेऊन राजगृहाला गेले!''

हें ऐकून देवदत्ताला वज्रप्रहार झाल्यासारखें दुःख झालें!

मागन्दिया ब्राम्हणकन्या

कुरूदेशामध्यें मागन्दिय नांवाचा एक ब्राह्मण रहात असे. त्याला एक सर्वलक्षणसंपन्न सुस्वरूप कन्या होती. पुष्कळ कुलीन ब्राह्मणांनीं तिला मागणी घातली; परंतु मागन्दियानें ते योग्य वर नाहींत असें ह्मणून त्यांनां आपली कन्या दिली नाहीं. धर्मप्रसाराला आरीा केल्यावर कांहीं वर्षांनी बुद्धगुरू कुरूदेशाला गेला. तेथें गांवोगांवी उपदेश करीत फिरत असतां त्याला मागन्दिय ब्राह्मणानें पाहिलें, व त्याच्या अंगावरील लक्षणें पाहून हाच आपल्या मुलीला योग्य वर आहे अशी त्याची खात्री झाली. तेव्हां तो बुद्धाला ह्मणाला ''हे श्रमण! आज कित्येक वर्षेमी माझ्या मुलीला योग्य वर पहात आहें; परंतु तुझ्यासारखा सर्वलक्षणसंपन्न कोणी आढळला नाहीं. आतां माझी मुलगी मी तुला अर्पण करतों; तिचा तूं अंगीकार कर''

बुद्ध ह्मणाला ''हे ब्राह्मण, या नाशवंत मनुष्यशरीराचा वीट आल्यामुळें मी गृहत्याग केला. कामसुखांत मला आतां आनंद वाटत नाहीं; तेव्हां माझ्यासाठी तुझ्या मुलीचा मीं परिग्रह कसा करावा?''

बुद्धाची निस्पृहता पाहून मागन्दिय ब्राह्मण आपल्या पत्नीसह बौद्ध उपासक झाला. पण त्याच्या कन्येला मात्र बुद्धाचा फार राग आला. ''माझ्यासाठी सुस्वरूप स्त्री या मुंडकाच्या पदरीं पडत असतां त्यानें माझी अवहेलना करावी व माझा अंगीकार करूं नये, हा मोठा चमत्कारच ह्मटला पाहिजे! जर मागेंपुढें मला संधि सांपडली, तर मी याचा सूड उगवीनच उगवीन,'' असे आपल्या मनाशींच उद्गार काढून तिनें एकवार बुद्धाकडे तिरस्कारयुक्त दृष्टीनें पाहिलें, व मान खालीं घालून ती चूप बसली.

मागन्दिय ब्राह्मणानें मुलीला भावाच्या स्वाधीन करून आपण प्रव्रज्या घेतली. तिच्या चुलत्यानें तिला दुसरा योग्य वर न मिळाल्यामुळें कौशांबी येथी उदयन राजाला दिलें. उदयनराजाला पुष्कळ राण्या होत्या; परंतु आपल्या सौदर्यानें आणि शहाणपणानें मागन्दिया त्या सर्वांत पट्टराणी होऊन बसली.

पुढें कांहीं वर्षांनीं बुद्धगुरू कौशांबीला आला असतां तिनें त्याचा सूड उगविण्याचा बेत अमलांत आणिला. शहरांतील धूर्त लोकांनां तिनें लांच देऊन जेथेंतेथें बुद्ध भेटेल, तेथेंतेथें त्याला शिव्या देण्यास लाविलें.

आनंद आणि बुद्ध भिक्षेसाठी कौशांबीमध्यें फिरत असतां त्यांजवर प्रत्येक गल्लींतून शिव्यांचा वर्षाव होऊं लागला. तेव्हां आनंद ह्मणाला ''भगवन्, या लोकांच्या शिव्वयाशापांपुढें आपण येथें रहाण्याची सोय राहिली नाहीं. चला आपण दुसरीकडे जाऊं.''

बुद्ध ह्मणाला ''आनंदा, जर तेथेंहि लोक आह्मांला शिव्या देऊं लागले, तर मग कोठें जाऊं या?''

आनंद ह्मणाला ''दुसऱ्या कोठें तरी.''

''पण आनंदा, आपण असें करूं गेलों, तर विनाकारण क्लेशभागी होऊं. येथल्यायेथेंच जर आह्मीं या लोकांचे शिव्याशाप सहन केले.

Moral Stories
(HINDI)

लोभ और तृष्णा

- धन की वर्षा होने से भी आदमी की कामना की पूर्ति नहीं होती । बुद्धिमान आदमी जानता है कि, कामनाओं की पूर्ति में अल्प-स्वाद है और दुक्ख है ।
- वह दिव्य काम-भोगों में भी आनन्द नहीं मानता । वह तृष्णा के क्षय में ही रत रहता है । वह सम्यक सम्बुद्ध का सावक है ।
- लोभ से मुक्त पैदा होता है, लोभ से भय पैदा होता है । जो लोभ से मुक्त है, उसके लिये न दुक्ख है न भय है ।
- तृष्णा से दुक्ख पैदा होता है, तृष्णा से भय पैदा होता है, जो तृष्णा से मुक्त है, उसके लिये न दुक्ख है, न भय है ।
- आदमी किसी भी वस्तु के प्रति आसक्त न हो,वस्तु विशेष की हानि से दुक्ख होता है । जिन्हे न किसी से प्रेम है और न घृणा है, वे बंधनमुक्त है ।
- काम भोग से दुक्ख पैदा होता है, काम-भोग से भय पैदा होता है, जो काम-भोगों से मुक्त है, उसे न दुक्ख है और न भय है ।
- आसक्ति से दुक्ख पैदा होता है, आसक्ति से भय पैदा होता है, जो आसवति से मुक्त है, उसे न दुक्ख है और न भय है ।
- राग से दुक्ख पैदा होता है, राग से भय पैदा होता है, जो राग से मुक्त है, उसे न दुक्ख है और न भय है ।
- जो शीलवान है, जो प्रज्ञावान है, जो न्यायी है, जो सत्यवादी है तथा जो अपने कर्तव्य को पूरा करता है, उससे लोग प्यार करते है ।

- भगवान बुद्ध और उनका धम्म
डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

क्लेश और द्वेष

- क्या संसार में कोई आदमी इतना निर्दोष है कि उसे दोष दिया ही नहीं जा सकता, जैसे शिक्षित घोडा चाबुक की मार की अपेक्षा नहीं रखता ?
- श्रद्धा, शील, वीर्य, समाधि, धर्म-विचय (सत्य की खोज), विद्या तथा आचरण की पूर्णता तथा स्मृति (जागरुकता) से इस महान दुक्ख का अन्त करो ।
- वाणी से बुरा वचन न बोलना, किसी को कोई कष्ट न देना, विनयपूर्वक (नियमानुसार) संयत रहना, यही बुद्ध की देसना है ।
- न जीवहिंसा करो और न कराओ ।
- अपने लिये सुख चाहनेवाला जो सुख चाहनेवाले प्राणियों को न कष्ट देता है और न जान से मारता है, वह सुख प्राप्त करता है ।
- जो निर्दोष और अहानिकर व्यक्तियों को कष्ट देता है, वह स्वयं कष्ट भोगता है ।
- यदि कोई आदमी किसी अहानिकर, शुद्ध और निर्दोष आदमी के विरुद्ध कुछ करता है तो उसकी बुराई आकर उसी आदमी पर पडती है, ठीक वैसे ही जैसे हवा के विरुद्ध फेंकी हुई धुल फेकनेवाले पर ही आकर पडती है ।

भगवान बुद्ध और उनका धम्म

अनुवादक : डॉ. मदन्त आनन्द कौसल्यायन

क्रोध और शत्रुता

- क्रोध न करो। शत्रुता को भूल जाओ। अपने शत्रुओं को मैत्री से जीत लो।
- क्रोधाग्नि शान्त होनी ही चाहिये।
- जो यही सोचता रहता है 'उसने मुझे गाली दी, उसने मेरे साथ बुरा व्यवहार किया, उसने मुझे हरा दिया, उसने मुझे लुट लिया' उसका वैर कभी शान्त नहीं होता।
- जो ऐसे विचार नहीं रखता उसी का वैर शान्त होता है।
- शत्रु शत्रु की हानि करता, घृणा करनेवाला घृणा करनेवाले की, लेकिन अन्त में यह किस की हानि होती है।
- आदमी को चाहिये कि क्रोध को अक्रोध से जीते, बुराई को भलाई से जीते, लोभी को उदारता से जीते और झुठे को सच्चाई से जीते।
- सत्य बोले, क्रोध न करे, थोडा होनेपर भी दे।
- आदमी को चाहिये कि, क्रोध का त्याग कर दे, मान को छोड दे, सब बन्धनों को तोड दें। जो आदमी नाम-रूप में आसक्त नहीं है, जो किसी भी चीज को 'मेरी' नहीं समझता है, उसे कोई कष्ट नहीं होता।
- जो कोई उत्पन्न क्रोध को उसी प्रकार रोक लेता है, जैसे सारथी भ्रान्त रथ को, उसे ही मैं (जीवन-रथ का) सच्चा सारथी कहता हूँ, शेष तो रस्सी पकडनेवाले ही है।
- जय से वैर पैदा होता है। पराजित आदमी दुक्खी रहता है। शान्त आदमी जय-पराजय की चिन्ता छोडकर सुखपूर्वक सोता है।
- कामाग्नि के समान आग नहीं, घृणा के समान दुर्भाग्य नहीं। उपादान स्कन्धों के समान दुक्ख नहीं, निर्वाण से बढकर सुख नहीं।

- भगवान बुद्ध और उनका धम्म

अनुवादक : डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

फूटा घड़ा

किसी गाँव में एक गरीब किसान रहता जो मेहनत मजदूरी करके अपना पेट भरता था। वह रोजाना दूर किसी नदी से पानी लाया करता था। रोज सुबह सूर्योदय से पहले ही उठता और अपने २ घड़ों को एक डंडे में बांधकर कंधे पर रखकर पानी लेने नदी की ओर चल देता। किसान के उन दो घड़ों में से एक घड़ा फूटा हुआ था। किसान नदी से दोनों घड़े भरकर लाता लेकिन घर आते फूटे घड़े से आधा पानी रास्ते में ही गिर जाता था। घर आते आते किसान के पास सिर्फ डेढ़ घड़ा पानी ही बचता था। लेकिन किसान कभी भी इस बात को लेकर चिन्तित नहीं होता था।

फूटे घड़े को खुद में बहुत शर्मिंदगी महसूस होती थी कि बेचारा किसान सुबह उठकर दूर तक पैदल जाता है और मैं बदले में उसे क्या देता हूँ? वहीं दूसरा घड़ा खुद पे गर्व महसूस करता था कि मैं पूरा पानी लेकर आता हूँ और अपने मालिक कि मेहनत बर्बाद नहीं होने देता।

रोजाना की तरह किसान एक सुबह जैसे ही दोनों घड़ों को ले जाने लगा, फूटा घड़ा बड़े ही करुण स्वर में बोला - हे मित्र! मैं खुद पर शर्मिंदा हूँ। तुम रोजाना कितनी मेहनत करते हो और मैं आधा पानी रास्ते में गिरा देता हूँ, मुझे क्षमा करें। किसान भी घड़े की दशा देखकर बहुत दुखी हुआ उसने फूटे घड़े से कहा कि मित्र तुम दुखी ना हो, आज जब मैं पानी लेकर लौटूं तो तुम रास्ते में खिले सुन्दर फूलों को देखना।

ऐसा कहकर किसान पानी लेने चल दिया। घड़े ने देखा कि पूरे रास्ते में रंग-बिरंगे फूल खिले हुए थे लेकिन फूटा होने के कारण उसका पानी लगातार निकलता जा रहा था। घर वापस आते ही घड़ा किसान से माफ़ी माँगने लगा - मित्र मैंने एक बार फिर आपकी मेहनत पर पानी फेर दिया और केवल आधा घड़ा ही पानी ला सका। किसान घड़े की बात सुनकर हंसा और बोला - मित्र शायद तुमने ध्यान से उन फूलों को नहीं देखा। रास्ते में खिले हर फूल तुम्हीं को देखकर मुस्कुरा रहे थे। जानते हो ऐसा क्यों? क्यूंकि तुमने ही उन फूलों को जीवन दिया है। तुम्हारी ही बिखेरे पानी से वो फूल मुस्कुराते हुए बड़े हुए हैं। मैं जानता था कि तुम्हारा पानी बिखर जाता है इसलिए मैंने पूरे रास्ते में फूलों के बीज बो दिए थे।

आज तुम्हारे ही कारण पूरा रास्ता स्वर्ग जैसा नजर आता है। लोग इन फूलों को तोड़कर भगवान को अर्पित करते हैं, सारे फूल तुमको देखकर खुशी से मुस्कुराते हैं। तुम्हारे दुखी होने का कोई कारण ही नहीं है, तुमने फूटे होते हुए भी ना जाने कितने लोगों की खुशियाँ दी हैं, ये तुम्हारी कमजोरी नहीं बल्कि शक्ति है। फूटा घड़ा किसान की बातों को सुनकर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

दोस्तों कमियाँ हर इंसान में होती हैं, और सुधार की गुंजाईश भी हमेशा रहती है। इस दुनिया में कोई भी पूर्ण नहीं है सबके अंदर कुछ ना कुछ कमियाँ जरूर हैं। लेकिन अपनी कमियों को अपनी कमजोरी ना बनने दें। ये कमियां ही इंसान को अनोखा बनाती हैं, अपने अंदर कमियों को अपनी ताकत बनाइये।

स्टीफन हॉकिंस दुनिया के सबसे बड़े वैज्ञानिकों में से एक हैं उनका पूरा धड़ काम नहीं करता लेकिन फिर भी वो आज एक सफल वैज्ञानिक हैं। इरा सिंघल विकलांग होते हुए भी IAS Topper बनीं। ऐसे कितने ही उदाहरण हमारे सामने हैं, जिन्हें हम रोज न्यूज चैनलों और अख़बारों में देखते हैं।

आपके अंदर की कमी आपकी कमजोरी नहीं है बल्कि वही कमी आपको दूसरों से अलग बनाती है। तो आज से अपनी कमियों को अपनी कमजोरी का हिस्सा ना बनने दें। और ये कहानी आपको कितनी अच्छी लगी ये हमें कमेंट करके जरूर बताएं

धम्मपद में पारमिताओं की साधना-विधि

1. दान–पारमिता

सभी प्राणियों के लिए सब कुछ दान करना तथा दान फल का भी त्याग दान–पारमिता है। जिस प्रकार पानी का घड़ा उलटा करने पर अपने सारे पानी को गिरा देता है, उसमें कुछ भी बचा नही रहता, उसी प्रकार आँधे घड़े की तरह होने को दान–पारमिता समझना चाहिए। दान देने वाले व्यक्ति को राम, मोह और व्देष जैसे विकारों से दूर रहना चाहिए।

''वीतरागेसु दिन्नं होति महप्फलं''
– तण्हा वग्गो–356
(राग–रहित पुरूषों को दिया गया दान महा फलदायी होता है।)

''वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फल''
–तण्डा वग्गो–357
(व्देष–रहित पुरूषों को दिया गया दान महा फलदायी होता है।)

''वीतदोसेसु दिन्नं होति महप्फल''
– तण्हा वग्गो–358
(मोह–रहित पुरूषों को दिया दान गया महा फलदायी होता है।)

''विगतिच्छेसु दिन्नं होति महप्फल''
–तण्डा वग्गो–359
(इच्छा–रहित पुरूषों को दिया दान गया महा फलदायी होता है।)

एक बार किसी राजा ने भगवान बुध्द और भिक्खु संघ को बहुत–सा धन दान मे दे दिया। इससे राजा का एक अमात्य बहुत प्रसन्न हुआ और दूसरा बहुत उदास हो गया। दोनों की विपरीत अवस्थाओं को देखकर भगवान् ने 'धम्मपद' की यह गाथा सुनाई।

''न वे कदरिय देवलोक वजन्ति,
बला हवे नप्पसंसन्ति दानं।
धीरो च दानं अनुमोदमानो,
तेनेव सो होति सुखी परत्थ।।''

— लोक वग्गो—177

(कृपण (कजूस) मनुष्य देवलोक को नहीं जाते हैं। मूर्ख मनुष्य दान की प्रशंसा नहीं करते हैं। धैर्यशील मनुष्य दान का अनुमोदन करता हुआ उसी से परलोक में सुख प्राप्त करता है।)

जेतवन विहार में, जब भगवान एकांत ध्यानावस्था में थे, उसी समय (शुक्र—इन्द्र) देवराज ने भगवान से समस्त दुखों को जीत लेने वाले चार प्रश्न पूछे। भगवान बुध्द ने उत्तर के रूप में इस गाथा को यूँ कहा —

''सब्बदानं धम्मदानं जिनाति,
सब्बरस धम्मरसं जिनाति।
सब्बरति धम्मरति जिनाति,
तण्हक्खयो सब्बदुक्ख जिनाति।।''

— तण्हा वग्गो—354

(धम्म का दान सब दानों को जीत लेता है। धम्म का रस सब रसों को जीत लेता है। धम्म के प्रति प्रेम सब प्रेमों को जीत लेता है और तृष्णा का विनास सब दुक्खों को जीत लेता है।)

इसलिए कहा गया है कि दान देने में जो सुख है वह दान लेने में नहीं। सत्पात्र को दिया गया दान निश्चय ही सुखदायी होता है। दान पारमिता की साधना में इस बात का ध्यान रखा जाता है कि यदि निर्वाण के लिए सब कुछ त्यागना ही हो तो यहीं अच्छा होगा कि सब कुछ प्राणियों को अर्पित कर दिया जाये।

2. शील—पारमिता

जिस प्रकार चमरी (सुरा—गाय) चाहे मर जाये, लेकिन किसी चीज में फँसी अपनी पूँछ को कोई हानि नहीं पहुँचाने देती। शील—पारमिता का

अभ्यास इसी प्रकार किया जा सकता है। शील के अन्तर्गत सभी प्रकार की कायिक,वाचिक और मानसिक सत्क्रियाएँ आती हैं। पंचशील का पालन उपासकों–उपासिकाओं के लिए तथा अष्टशीलों का पालन भिकखुओं–भिक्खुणियों के लिए अनिवार्य हैं। शील पालन के लिए 'धम्मपद' में कहा है –

''यो पाणमतिपातेति मुसावदं च भासति।
लेके अदिन्नं आदियति परदारं च मच्छति।।''
– मल वग्गो–246

(जो प्राणियों की हिंसा करता है, झूठ बोलता है, लोक में न दी गयी वस्तु को ले लेता है तथा परस्त्रीगमन करता है।)

''सुरामेरयपानं न यो नरो अनुयुत्र्जति।
इधेवमेसो लोकास्मिं मूलं मूलं खणति अत्तेना।।''
–मल वग्गो–247

(जो मनुष्य मद्यमान में लग्न होता है, वह यहीं इसी लोक में अपनी जड़ को खोदता है।)

इस प्रकार पंचशील बौध्द–नैतिकता का आधार है। विकार रूपी मैल गंगा जल से भी नहीं घुलता, शील–पारमिता के अभ्यास से हम सभी विकारों को परिशुध्द कर सकते हैं। इसलिए कहा गया है कि शील–पालन के बिना गृहस्थ या उपासक धर्म के किसी भी गुण का अधिकारी नहीं हो सकता।

भगवान बुध्द ने जेतवन में उपस्थित भिक्खु–संघ को शीलवंत जीवन के प्रताप के बारे में एक ही कथा सुनायी। एक बार कुछ वृध्द लोगों ने भिक्खु–संघ की उपसम्पदा–ग्रहण की और ध्यान भावना के लिए जंगल में जाने की योजना बनायी। वे भगवान के पास अनुमति के लिए आये। जंगल में उनके जीवन के संकट को जानकर भगवान बुध्द ने उनके साथ संकिच्च नामक युवा शीलवंत सामनेर (श्रामणेर) को भेज दिया। जंगल के डाकुओं को जब ये खबर लगी तो वे सब दलबल सहित उनकी बलि के लिए आ पहुँचे। सभी वृध्द भिक्खु डर गये और वे उनसे अपने जीवन की याचना

करने लगे। युवा संकिच्च ने उनसे कहा– ''इन्हें छोड़े दो, मैं बलिदान के लिए तैयार हूँ। मेरी बलि ले लो।''

डाकुओं के मुखिया ने युवा सामनेर पर तलवार के अनेक वार किए किन्तु वह हर बार असफल रहा। अब वह तलवार फेंककर उनके चरणों पर गिरकर क्षमा माँगने लगा। अंतमें वह अपने सभी साथियों के साथ भिक्खु–संघ में दीक्षित होकर धम्म–पथ का अनुगामी बना। इसके बाद सामनेर संकिच्च भगवान के पास श्रावस्ती लौट आये। शील–पारमिता के प्रताप की इस कथा के बाद भगवान ने 'धम्मपद' की यह गाथा सुनायी –

''यो च वस्ससतं जीवे दुस्सीलो असमाहितो।
एकाहं जीवितं सेय्यो सीलवन्तरस्स झायिना।''
– सहस्स वग्गो–110

(दुराचारी या दुष्शील और असंयत रह कर सौ वर्ष तक जीवित रहना निरर्थक हैं। किन्तु सदाचारी या शीलवंत और संयत रह कर एक दिन का जीवित रहना श्रेष्ठ है।)

इसलिए कहा गया है –

''तेस संपन्नसीलनं मारो मग्गं न विन्दति।''
–पुप्फ वग्गो–57

(ऐसे जो शील सम्पन्न पुरूष हैं उनके मार्ग को मार (शैतान) नहीं रोक सकता।)

इसीलिए शील की महिमा के बारे में कहा गया है –

''सुखं याव जरा सीलं''
– वग्गो–333
(वृध्दावस्था तक शील का पालन सुखकारी है।)

एक बार स्थविर आनन्द मे भगवान बुध्द से पूछा–क्या ऐसी भी कोई गंध है जो वायु के विपरीत जाती है? भगवान ने कहा –

''चन्दनं तगर वा पि उत्तपल अथ वस्सिकी।
ऐतस गन्धजातान सीलगन्धो अनुत्तरो।।''
पुप्फ वग्गो–55

(चन्दन, तगर, कमल या जुही, इन सबकी सुगन्धों से शील और सदाचार की गन्ध उत्कृष्ट होती है।)

सभी पुष्पों की गन्ध वायु के विपरीत नहीं जाती। किन्तु शील गन्ध वायु के विपरीत भी जाती है।

''अप्पमत्तो अय गन्धो य्वायं तगरचन्दनो।
चा च सीलवतं, गन्धो वाति देवेसु उत्तमो।।''
– पुप्फ वग्गो–56

(तगर और चन्दन की यह जो गन्ध है, वह अल्पमात्र है। परन्तु जो शीलवत की गन्ध है, वह उत्तम गन्ध देवी–देवताओं में फैलती हैं।)

अतः यह ठीक ही कहा गया है कि शील पर प्रतिष्ठित होकर ही अविद्या के विकारों को हटाया जा सकता है।

पिपलायन मधुकर, धम्मपद और दस पामिताएँ

भारतीय बौध्द मद्यसभा, दिल्ली, 2000

3. नैष्क्रम्य पारमिता

जिस प्रकार बंदीघर में रहे मनुष्यों को बंदीघर के प्रति राग उत्पन्न नहीं होता। उसी प्रकार सभी योनयों को बंदीघर की तरह समझना ही नैष्क्रम्य–पारमिता है। इसका तात्पर्य संसार को छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण करना भी होता है। सिध्दार्थ गौतम का महाभिनिष्क्रमण अर्थात् गृह–त्याग उनकी नैष्क्रम्य–पारमिता का उत्कृष्ट उदाहरण है।

उस जमाने की एक घटना है। कुछ भिक्खु शील–सदाचार में पारंगत होकर यह सोचने लगे कि अब अर्हतपद उन्हें प्रापत ही हो जायेगा। भगवान बुध्द ने उनकी मनोदशा जानकर उन्हें देसना दी कि जब तक अपने परमलक्ष्य अर्थात् अर्हतपद को प्राप्त नहीं हो जाते, हमें सत्प्रयत्न करते रहना चाहिए।

''फुसामि नैक्खम्मसुखं अपुथुज्जनसेवितं।
भिक्खु विस्सासमापादि उप्पतो आसवक्खयं।।''
– धम्मट्ठ वग्गो–272

(मैं सामान्य जनों के पहुँच से परे अपृथग्जनों से सेवित नैष्क्रम्य सुख अर्थात् निर्वाण सुख का अनुभव करता हूँ। हे भिक्खु! ज्ब तक आस्रवों या चित्त का मैल नष्ट न हो जाये, तब तक विश्वास मत करो।)

यहाँ पर संकेत है कि नैष्क्रम्य–पारमिता की पूर्णता न केवळ शील –पालन और न समाधि–लाभ से होती है, बल्कि चित्त के पूर्ण विमल होने से होती है।

नैष्क्रम्य का अर्थ प्रव्रज्या भी कहा गया है। सिध्दार्थ गौतम ने महाभिनिष्क्रमण प्रव्रज्या के लिए ही किया था। एक बार अन्य सम्प्रदाय

नैतिक शिक्षा की आवश्यकता

चरित्र का निर्माण :– मनुष्य के भाग्य का निर्माण उसका चरित्र करता है। चरित्र ही उसके जीवन में उत्थान और पतन, सफलता और विफलता का सुचक है। अतः बालक को सफल व्यक्ति, उत्तम नागरिक और समाज का उपयोगी सदस्य बनाने चाहते है, तो उसके चरित्र का निर्माण किया जाना परम आवश्यक है। यह तथी संभव है, जब उसके लिए धार्मिक और नैतिक शिक्षा की व्यवस्था की जाये।

उचित मूल्यों का समावेश – पाश्चात्य देशों के समाजों में धार्मिक और नैतिक शिक्षा के अभाव के कारण अनेक गंभीर दोष उत्पन्न हो गये है। अतः वहां के अनेक महान विचारकों की यह धारणा बन गई कि धार्मिक और नैतिक शिक्षा के व्दारा छात्रों में उचित मूल्यों का समावेश किया जाना अनिवार्य है। क्योंकि भारतीय समाज में भी पाश्चात्य समाजों के कतिपय दोष दृष्टिगोचर होने लगे है, अतः उनका उन्मूलन करने के लिए पाश्चात्य विचारकों की धारणा के अनुसार यहाँ भी कार्य किया जाना आवश्यक है।

धार्मिक और नैतिक शिक्षा की विष सामुग्री –

भारत मे अनेक धर्मी और सम्प्रदायों के व्यक्ति निवास करते है। संविधान की 19 वीं धारा उनको अपने धर्मों काा अनुसरण करने की पूर्ण स्वतंत्रता देती है। गांधीजी के अनुसार ''मेरे लिए नैतिकता, सदाचार और धर्मपर्यायवाची शब्द है। नैतिकता के आधारभूत सिध्दांत बच्चों को निश्चित रूप से पढ़ाया जाना चाहिए और इसको पर्याप्त धार्मिक शिक्षा समझा जाना चाहिए।

'धार्मिक शिक्षा समिति' के सुझाव जनवरी 1995, केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने लाहौर के बिशप बार्ने की अध्यक्षता में, 'धार्मिक शिक्षा समिति' की नियुक्ति की, और इससे शिक्षा संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दिये जाने के संबंध में सुझाव मांगे।

इस समिति ने अपनी 1956 की रिपोर्ट में धार्मिक और नैतिक शिक्षा की विषय–सामग्री के संबंध में निम्न सुझाव दिए है –

1. शिक्षा की प्रत्येक योजना में जीवन के नैतिक और आध्यात्मिक मूल्यों का स्थान दिया जाये।
2. सब धर्मों के सामान्य नैतिक और आध्यात्मिक सिध्दान्तों को पाठयक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाये।

'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' के सुझाव 1948 में डॉ. राधाकृष्ण की अध्यक्षता में नियुक्त किए जाने वाले 'विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग' ने धार्मिक और नैतिक शिक्षा की विषयवस्तु के बारे में अधोलिखित सुझाव दिये है।

विद्यालय स्तर विशेष रूप से माध्यमिक स्तर के लिए 'आयोग' के सुझाव निम्नलिखित है।–

1. छात्रों को महान व्यक्तियों की जीवनियाँ पढ़ाई जाये।
2. छात्रों को श्रेष्ठ नैतिक और धार्मिक सिध्दांतों को व्यक्त करनेवाले कहानियाँ पढाये जाए।
3. जीवनियों में महान व्यक्तियों के उच्च विचारों और श्रेष्ठ भावनाओं का समावेश किया जाए।
4. कहानियाँ और जीवनियाँ श्रध्दा, सुंदरता और सज्जनता से लिखी जाये।

विश्वविद्यालय स्तर के लिए 'आयोग' के सुझाव इस प्रकार है।

1. डिग्री कोर्स के प्रथम वर्ष में बुध्द, कन्फ्युसियस, जोरोस्टर, सुकरात, ईसा, शंकर, रामानुज, माधव, कबीर, नानक गांधी आदि महान धार्मिक नेताओं की जीवनियाँ पढ़ाई जाये।
2. व्दितीय वर्ष संसार के धार्मिक ग्रंथों में से सार्वभौमिक महत्व के चुने हुए भागों को पढ़ाया जाए।
3. तृतीय वर्ष में धर्म–दर्शन की मुख्य समस्याओं का अध्ययन किया जाए।

4. छात्रों में नैतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक मूल्यों का विकास करने के लिए भारत में अन्य देशों की संस्कृतियों से सामग्री का संकलन किया जाए।
5. डिग्री कोर्स के पाठ्यक्रम में संसार के विभिन्न धर्मों के सामान्य अध्ययन को स्थान दिया जाए।

इस संदर्भ में निम्न सुझाव दिये जा सकते है।–

1. सामाजिक नियम जो सामाजिक आदर्शों की प्राप्ती में सहायक होते है नैतिक नियम होते है और उनको पालन करने का भाव अथवा शक्ती नैतिकता है।
2. धर्म, जीवन के सत्यों, मूल्यों और कर्तव्यों के लिए एक संज्ञा है और शिक्षा इनके प्राप्ति का स्थान है।
3. नैतिक शिक्षा के अंतर्गत शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक स्वास्थ का प्रशिक्षण, शिष्टाचार, उपयुक्त साामाजिक आचरण, नागरिक अधिकार–कर्तव्य और धार्मिक प्रशिक्षण आदि क्रियाएं समाहित है।
4. भारतीय संविधान की 19 वीं धारा सभी को अपने धर्मों का अनुसरण करने की पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान करती है।
5. बलकों में नैतिकता का विकास करने के लिए विद्यालय अपने विभिन्न क्रियाकलापों व्दारा शैक्षणिक कार्यक्रमों का आयोजन कर सकता है।

सरसों के दाने (किसा गौतमी की कहानी)

एक धनी आदमी था। न जाने उस का सारा सोना चान्दी कैसे यकायक राख–मिट्टी के में परिचित हो गया। उसे इस बात का इतना दुःख हुआ कि उसने बिस्तर पकड़ लिया और सारा खाना–पिना छोड़ दिया। उस का एक मित्र उसे देखे आया तो उसे उसके दुःख का सही कारण पता लगा। उस मित्रने कहा, ''तुमने धन–दौलत का सही उपयोग नहीं किया। जब तुमने बटोर रखा था तो वह राख मिट्टी से किसी तरह कम नहीं रहा। अब मेरी सलाह मानो। सड़क पर चटाइयां बिच्छा दो। उन प रवह सब राख–मिट्टी डाल दो और ऐसा दिखावा करो कि मानो तुम उसे बेच रहे हो।''

धनी आदमी ने वैसा ही किया, वैसा उस के मित्र ने परामर्ष दिया था। तब पड़ोसियों ने पूछा–क्या तुम यह राख–मिट्टी बेच रहे हो?

धनी आदमी का उत्तर था, ''मैंने अपना माल बेचने के लिये रखा है।

कुछ समय बाद किसा गोतमी को एक अनाथ दरिद्र लड़की बाजार में से गुजरी। उसने उस धन आदमी को माल बेचता देखा तो बोली– ''स्वामी! टापने बेचने के लिये यह सोने–चान्दी का ढेर क्यों लगा रखा है।''

धन आदमी बोला–''क्या तुम मुझे वह सोना–चान्दी दोगी?'' किसा गोतमीने उस राख–मिट्टी की मुट्टी भरी और वह देखते–देखते सोना–चान्दी हो गयी।

यह सोचकर कि किसा गोतमी को दिव्य–दृष्टि प्राप्त है और वह वस्तुओं के वास्तविक रूप को पहचान सकती है, धनी आदमीने अपने लड़के से उनकी शादी कर दी। उससे कहा– ''बहुत से लोगों के लिए सोना–चान्दी राख–मिट्टी के समान है। किन्तु किसा गोतमी का हाथ लगते ही राख मिट्टी हो जाती है।''

किसा गोतमी का एक ही बच्चा था और वह मर गया। अपनी मानसिक पीडा भी अवस्था में वह अपने बच्चे को सभी पास–पडौसी के घर ले गई। और उनसे अपने बच्चे के लिए दवाई चाहि। सभी लोग कहने लगे

कि किसा गोतमी विक्षीप्त हो गई है। उस का बच्चा मर गया है।

अन्त में उसे एक आदमी मिला। जिसने उसे सांत्वना भरा उत्तर दिया – ''मैं तुम्हारे बच्चे के लिए तुम्हे कोई दवाई नहीं दे सकता। लेकिन मैं एक ऐसे वैद्य को जानता हूँ जो दवाई दे सकता है।''

किसा गोतमी बोली – ''कृपया उसका अता–पता बता दें।''

आदमीने उसे शाक्य मुनि गौतम बुध्द के पास जाने को कहा।

किसा गोतमी बुध्द की शरण में पहुँची और अपने बच्चे के लिए दवाई चाही।

तथागत बोले, ''किसी गोतमी! किसी ऐसे घर से सरसों के दाने ले आ जिस घर में न कोई बच्चा मरा हो, न स्त्री मरी हो, न जवान मरा हो और न कोई बुढ़ा मरा हो।''

किसा गोतमी घर–घर घुमी। हर घर के लोग सरसों की मुट्टी देने को तयार थे। लेकिन उसे एक भी घर ऐसा न मिला जहाँ कोई बेटा, बेटी, पिता अथवा माता न मरी हो। लोगोंने कहा– ''मृतों की संख्या अधिक है। जीवितों की संख्या तो कम है। हमें हमारे प्रिय जनों के वियोग की याद मत दिला।''

अब किसा गोतमी बहुत थक चुकी थी और निराश भी हो गई थी। वह सड़क के किनारे जा बैठी। शाम की बत्तियां जल चुकी थी। रात के समय उसने कुछ बत्तियों को जलते–बुझते देखा। उसे ख्याल आया कि मनुष्य भी एक जलती–बुझती बत्ती के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। वह यह भी सोचने लगी कि वह अपने दुःख में कितनी स्वार्थी है। मृत्यु तो सभी के लिए है। इसका कोई अपवाद नहीं। तो भी निराश की इस घाटी में एक रास्त एसा है जो उस प्राणी की अमरत्व की ओर ले जाता है, जिसने स्वार्थ त्याग कर दिया हो।

अपने बच्चे के लिए जो स्वार्थपूर्ण आसाप्ति थी, उसे एक ओर रख कर उसने जंगल में ही उसकी अन्त्येष्टी कर डाली। लौटकर उसने बुध्द, धम्म तथा संघ की राख ग्रहण की जो सभी दुःखों की दवाई है।

भगवान बुध्दने कहा – ''इस संसार में प्राणी अल्प–जीवी होते है। वे दुःखी रहते है और उन्हे तरह–तरह की पीड़ायें सहन करनी पड़ती है। क्योंकि ऐसा कोई भी उपाय नहीं कि जिस ने जन्म ग्रहण किया है, उसका मरण न हो। जन्म के बाद मृत्यु है ही। प्राणियों की यही प्रकृति है।

जिस तरह पके फल को पेडसे गिरने का डर लगता रहता है, उसी तरह जिसने भी जन्म ग्रहण किया है, उसका मरना अवश्यकम्भावी है।

जिस तरह कुम्भार के बनाये सभी बरतन आगे पिछे टूटते ही है–ऐसा ही है प्राणियों क जीवन।

''चाहे तरूण हो, चाहे वृध्द हो, चाहे पण्डित हो सभी मृत्यु परायण है।''

जिनके जीवन का अन्त आ जाता है, तो न पुत्र पिता का संरक्षण कर सकता हैं और न पिता ही पुत्र का। कोई भी रिस्तेदार अपने किसी भी रिस्तेदार को संरक्षण नहीं प्रदान कर सकता।

''रिश्तेदर रोते धोते ही रह जाते है, यमराज एक–एक को वैसे ही लिये चला जाता है, जैसे बैल को वध स्थल की ओर।''

''सारा संसार जन्म और मरण से बंधा है। इस बात के जानकार बुध्दिमान लोग दुःखी नहीं होते।''

''लोग सोचते रहते है कि अमूक घटना अमूक तरह घटेगी। वह प्रायः उल्टी तरह ही घटती है। बड़ी निराशा होती है – यही मनुष्य जीवन है।'8

''रोने–धोने से, दुःखी होने से किसी को चित्त की शान्ति प्रापत नहीं होती। ऐसा करनेवाले का शारीरिक तथा मानसिक कष्ट व्दिगुणित हो जाता है। वह अपने आप को बीमार और पीला बना देता है। तो भी इससे मृत प्रिय जनों को कोई लाभ नहीं पहुँचता।''

''लोग मर जाते है। मरणान्तर उनका क्या होता है, यह उनके कर्म ही तय करते है।''

''आदमी चाहे सौ वर्ष तक जीता रहे या उससे भी अधिक। एक न एक दिन उसे अपने प्रिय जनों से पृथक होना ही पडेगा।''

''जो शान्ति चाहता है, उसे उस बाण को निकालना चाहिये, जो चिन्ता का, जो दुःख–दर्द का बाण उसे लगा है''

''जिस बाण को बाहर निकाल दिया है, जो संयत हो गया हो, वही चित्त की शान्ति प्राप्त करेगा। जिस ने सभी दुःखों को जीत लिया है, वही अनन्त सुख प्राप्त करेगा।''

जनतंत्र

बुद्ध धर्म के साहित्य के अनुसार राजतंत्र के आदर्शों का इतना अधिक विवरण देने के बाद अब हम इस विषय पर विचार करेंगे कि क्या बुद्ध धर्म राजतंत्र को ही आदर्श राज्य मानता है। प्राचीन समय में जब बुद्ध भी उपस्थित थे तो भारतवर्ष में अनेक बड़े–बड़े राज्य थे। जैसे मगध और कोशल अनेक जनतंत्रीय अथवा गणतंत्रीय राज्य भी थे। बुद्ध ने सुनिश्चित रूप से अपने विचार जनतंत्रीय राज्यों के पक्ष में व्यक्त किए थे और कहा था कि सरकार का यह (जनतंत्रीय) विचार ही समाज की समृद्धि के लिए उत्तम है।

अजातशत्रु व्दारा गणतंत्रात्मक राज्य, वज्जि प्रदेश पर आक्रमण की तैयारी करने के संदर्भ में बुद्ध ने कहा था – ''आनन्द, क्या तुम जानते हो कि वज्जि लोग नियमित रूप से सभागार में अधिकाधिक संख्या में एकत्रित होते हैं?'' जी, मैंने ऐसा ही सुना है'' आनन्द ने उत्तर दिया। इस पर बुद्ध ने अपने उद्‌गार इस प्रकार व्यक्त किए– ''आवुस आनन्द जब तक वज्जिसंघ के लोग भारी संख्या में नियमित रूप से एकत्रित होते हैं तब तक उनकी उन्नति हीं होगी उनका पराभव नहीं होगा'' ''आनन्द जब तक वज्जिलोग आपसी स्नेह से उठते बैठते है'' और पारस्परिक प्रेम भाव एवं भाईचारे से विदा होते हैं, जब तक अपनी कार्यवाही सद्‌भावना से चलाते हैं, जब तक वे कोई रक्ति म अध्यादेश जारी नहीं करते और मान्य अध्यादेशों जारी नहीं करते और मान्य अध्यादेशों को निरस्त नहीं करते और कानून के अनुसार ही सब कार्यों का निष्पादन करते हैं, जब तक वज्जिगण अपने वरिष्ठ आचार्यों का आदर सम्मान करते हैं उनकी बातों पर ध्यान देकर उचित मार्ग पर चलते हैं, जब तक वज्जित समाज की महिलाओ और युवतियों पर अत्याचार नहीं होते उनका सम्मान होता है, उनकी लज्जा का हरण नहीं होता और अपने पूज्य एवं इष्ट तीर्थ स्थलों की सेवा सुरक्षा, सम्मान अन्तर्मन एवं बाह्य रूप में भी करते हैं और यज्ञ–हवन आदि में प्राणियों की बलि के नाम पर हत्या नहीं करते बल्कि उसका तिरस्कार करते हैं और अपने आधीन अफसरों, सेनाओं

के अधिकारियों को सही तरह से रखते हैं जिससे वे स्वतंत्रता पूर्वक राजधानी में सुरक्षा की दृष्टि से आवागमन कर सकें। तब तक हे आनन्द! वज्जियों की प्रगति ही होगी उनकी अद्योगति नहीं।''

प्राचीन भारत में बुद्ध की विचारधारा ने जनतत्र के स्वरूप की उत्पत्ति एवं विकास में महती योगदान किया है। जैसा कि भारत के पूर्व वाइसराय जैटलैंड ने अपनी लिगेसी आफ इण्डिया (भारत की दास्तान) नामक पुस्तक के परिचय खण्ड में व्यक्त किया है। लॉर्ड जैटलैंड का कहना है– ''हमें भलि–भाँति ज्ञात है कि ईशवी शताब्दी के पूर्व भारत में राजनीति विज्ञान, संस्कृत, अर्थशास्त्र अने विव्दानों का प्रिय विषय था। ईशापूर्व 300 वर्ष में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान मंत्री कौटिल्य (चाणक्य) व्दारा राज्यसंबन्धी उत्पत्ति उस समय के सामाजिक समझौते का ही परिणाम था और आप यह देखेंगे कि उस समय जो राज्य की उत्पत्ति एवं उससे संबन्धित समझौते से राजा को स्थापित किया गया उसके पीछे जन भावना यह थी कि कोई ऐसी बाह्य शक्ति अवश्य होनी चाहिए जो शान्ति व्यवस्था कायम रखने वाली राज्य की अन्य संस्थाए किया गया उसके पीछे जन भावना यह थी कि कोई ऐसी बाह्य शक्ति अवश्य होनी चाहिए जो शान्ति व्यवस्था कायम रखने वाली राज्य की अन्य संस्थाए उसके अधिपत्य पर विश्वास करें तथा उसका आदर एवं अनुकरण करें। याज्ञवल्य स्मृति में राजा के लिए कहा गया है कि वह स्वयं व्दारा स्थापित नियमों को पिरवारों, जातियों समूहों एवं समुदायों पर सुचारू रूप से लागू करे। यह भी ध्यान देने योग्य है कि स्वशासन की प्रवृत्ति एवं उससे, सम्बन्धित संस्थाओं को बुद्ध व्दारा पुरोहितवादी अधिकार को अमान्यता तथा जाति को नकारने से उत्पन्न मानव–मानव में समता की भावना से नया जीवन मिला। वास्तव में बौद्ध ग्रन्थों के व्दारा ही हमें ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में प्रतिनिधि सरकार होने के साक्ष्य मिलते हैं। जिनसे उनकी जनतंत्रीय कार्य प्रणाली का भी ज्ञान होता है। बहुत से लोगों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि आज भी हमारी संसदीय (कार्यवाही) की कुछ–कुछ जड़े दो हजार वर्षों के पहले बौद्ध काल के भारत में उस समय के (विधान) मंडलों में पाई जाती है।

(असेम्बली) सभागार की गरिमा के लिए नियुक्त एक विशेष

अधिकारी होता था जैसे हमारी लोक सभा में अध्यक्ष की सहायता के लिए लोक सभा सचिव होता है। दूसरा अधिकारी यह देखने के लिए होता था कि सदस्यों की आवश्यक उपस्थिति हो गई है अथवा नहीं। जिस तरह से पार्लियामेन्ट में मुख्य अधिकारी होता है। एक सदस्य इसलिए होता था कि जब कोई प्रस्ताव वार्ता या विमर्श के लिए आता था तो उसके लिए सभा का संचालन उचित ठंग से करें। कुछ मामलों में यह एक ही बार होता था और किन्हीं–किन्हीं प्रस्तावों पर तीन बार भी विमर्श होता था जैसे आजकल किसी प्रस्ताव को कानून का रूप देने के लिए तीन बार वाचन होता है। यदि किसी विषय पर सर्वसम्मति नहीं हो पाती थी तो फिर मत विभाजन की प्रक्रिया अपनायी जाती थी और अन्तिम निर्णय मतदान व्दारा बहुमत के आधार पर किया जाता था।''

ठस जानकारी से सम्बद्ध हम पाते हैं कि प्राचीन भारत में जनतात्रिक व्यवस्था थी और इस सम्बन्ध में बुद्ध व्दारा वज्जियो के संदर्भ में दिया गया उपदेश अधिक उपयुक्त एवं महत्वपूर्ण है। जैसा कि जेटलैण्ड महोदय ने कहा– ''बुद्ध के समतामूलक सिद्धान्त ने भारतीय जनता के सामाजिक तंत्र व राजनीतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला और यह प्रभाव लगभग चौदह शताब्दियों तक रहा।''

सुत्तनिपात नामक ग्रन्थ में बुद्ध व्दारा दिए गए एक उपदेश में हम पाते हैं– ''जो जीवित प्राणियों की जाति एव उसके भेद के विषय में– हे वासेट्ठ! (एक ब्राह्मण) मैं तुम्हें सत्य बताता हूँ कि धीरे–धीरे इसका विकास किस प्रकार हुआ। जाति–भेद के लिए कृपया आप तृण (घास) एवं वृक्ष को देखें। उनका एकरूपता के लिए कोई शक्तिशाली तर्क प्रस्तुत नहीं किया जा सकता। क्योंकि उनमें कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य पाई जाती है। जाति वास्तव में भेद करती है। जैसे भवरा, मकणी, एवं चीटियाँ आदि। वे भी अपनी–अपनी प्रजाति में समानता रखने के चिन्ह रखते हैं। इसी प्रकार चौपाए भी भिन्न–भिन्न रूपों में पाए जाते है। जैसे गाय, भैंस, घोड़ा, कुत्ता आदि। कुछ भीमकाय और कुछ कृशकाय एवं छोटे। इसी प्रकार रेगने वाले जीव जैसे साँप, मगरमच्छ आदि। लम्बी रीड़ वाले प्राणी जैसे मछली। तालाब पर आश्रित बगुला, मेढ़क आदि पानी के जीव, हवा में उड़ने वाले

पक्षी आदि। वे सभी अपनी प्रजातियों के अनुकूल चिन्ह रखते हैं। अतः वे एक प्रकार के हैं एक जाति के हैं। जाति तभी भिन्न होती है जब उनका जन्म भिन्न जाति से होता है और उनके चिन्ह स्वभाव आदि उसी जाति के होते हैं। किन्तु मनुष्यों में तो यह विभिन्नता नहीं पायी जाती। न उनके केशों में, सिरों में, कानों में, आँखों में, मुख में, नाक में, होठों में, भौहों में, गले में कमर में, पेट में, पीठ में उनके प्रजनन अंगों में या उनकी मादा (अर्थात स्त्रियों) के स्तनों में, न पैरों व हाथों में, ऊंगली या नाखूनों में उनकी पिण्डलियों में न रंग में न स्वर में। सभी में एक प्रकार के अंग होते हैं अतः वे एक जाति के ही होते हैं। मनुष्यों के शरीर में कोई ऐसी विचित्रता नहीं पायी जाती जिससे उनको अलग–अलग ऊँच नीच जातियां में विभाजित किया जा सके। मनुष्यों के रूप बुद्धि आदि में मामूली अन्तर पाया जाता है जिसे जाति भेद का आधार नहीं माना जा सकता। फ्रांस की क्रान्ति से बीस शताब्दियों पूर्व बुद्ध ने स्वतंत्रता, समानता एवं भाईचारे को अच्छी सरकार के मौलिक गुणों की व्याख्या की थी जो आज भी मान्य एव प्रासंगिक है।

इसके इतिरिक्त भी ''तेसकुण जातक'' के माध्यम से राजा के करणीय धर्मों की व्याख्या की गई है जो संक्षेप में इस प्रकार है–

सर्वप्रथम किसी भी शासक–प्रशासक या राजा को प्रमादी (असावधान आलसी) न होकर सर्वथा सचेत एवं अप्रमादी होना चाहिए। सभी कार्यों को सावधानी पूर्वक चैतन्यता से संपादित करे व करवाए।

शासक स्वयं असत्य, क्रोध तथा छिछोरेपन से बचे तथा सत्य, धैर्य एवं गरिमामय आचरण करे। यदि कोई ऐसा कार्य हो गया हो जिसका परिणाम स्पष्टतया हानि कारक आ रहा हो तो यत्नपूर्वक बिना राग व्देष के उस कर्म को न दोहराए एवं पुनः न करने का संकल्प करे (प्रजा व्दारा किए गए) सभी पापमय दुष्कर्म राजा के ही पाप कहलाते हैं। क्योंकि वही उनका नेता होता है। स्वामी होता है। धन–धान्य भी उत्थानोन्मुख एवं ईर्ष्याविहीन पुरूष के पास ही ठहरता है। जो ईर्ष्यावान, दुष्टमना, दुषित कर्म वाले शासक होते है उनके कुशलचित्त (कल्याणकारी विचारों) को उनकी ही व्देषाग्नि जला कर नष्ट कर देती है। अतः राजा या शासक सुहृदय हो सबका हित चिन्तक हो जनता के लिए शिल्प, व्यापार कृषि आदि का उत्तम

प्रबन्ध करे जिससे सभी जन कार्य व्यहार में संलग्न हो अपनी जीविका कमाएँ और धर्माचरणसे सुखी जीवन यापन करें। दरिद्रता को दूर भगाने का सतत् प्रयास करे। शत्रुओं के प्रति सदैव सजग रहे तथा (सीमाओं का) अतिक्रमण या आक्रमण होने पर शत्रु को निर्भीकता एवं वीरतापूर्वक जड़–मूल से उखाड़ फेंके जिससे शत्रु पुनः दुष्कर्म का साहस न करे और मैत्री पूर्ण रहे।

श्रेष्ठ राजा (शासक) उत्थानोन्मुख वीर एवं धैर्यवान हो शुभ कर्मों में अनुरक्त रहे। स्थिर चित्त (सुदृड़ विचारो वाला) ही सफल एवं कुशल राजा होता है। अनिन्दित्त एवं उद्योगशील रहकर ही राष्ट्र का कल्याणकर सकता है। भोग में लिप्त, झूठ–फरेब में फँसा, इन्द्रियों का दास, राजकोष का दुरूपयोग करने वाला, प्रमादी (आलसी=असावधान) स्वयं का तथा राष्ट्र का विनाश करता है। जो कुछ जनता के हित में प्राप्त नहीं कर सकता है उसे (उन लक्ष्यों को) प्राप्त करने तथा जनता के हित में प्राप्त है या उपलब्ध है उसका अनुरक्षण करना राजा (शासक) का कर्त्तव्य है। यह तथी सम्भव है कि राजा उत्तम विवेक वाला हो और अपने मंत्रियों को पहचानने की सम्यक, दृष्टि रखने वाला हो कि उसके मंत्री धीर हो, अर्थ (राजनीति) के जानकार हो। राज्य की प्रत्येक विधा को इस प्रकार सम्भालें जैसे अनेक घोड़ों का रथकार (सूत) सभी घोड़ों को सही दिशाओं में गतिमान रखता है। जब चाहता है हित में रोकता है– हित में वेग से दौड़ाता है। अपने अन्तः कर्मियों सेवकों को उचित दान–वेतन देकर विश्वास पात्र रखकर उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखें। जिससे वे पूर्ण ईमानदारी से राजकोष की सुरक्षा तथा उचित व्यय तथा रखरखाब करें। फिर भी राजा (शासक) आय–व्यय का स्वय निरीक्षण करें तथा कृत्य अकृत्य को स्वय जानकार उचित व्यवहार करे। क्योंकि राजा के पास जो कुछ भी कोषागार में है वह प्रजा की गाढ़ी कमाई का ही धन धान्य व हीरे मोती आभूषण आदि है। स्वय जनपद (राज्य) के लोगों का अर्थ–सम्बन्धी मार्ग दर्शन करे तथा दण्डनीय को दण्ड एवं पुरष्कार योग्य को पुरष्कार दे। जल्दबाजी में विवेकहीनता से कार्य न करे अन्यथा विनाश को प्राप्त होगा।

राजा (शासक) को ज्ञात होना चाहिए कि संसार में प्रायः पाँच प्रकार

की शक्तियाँ कही गई हैं जैसे, काय–बल अर्थात अपने शरीर की शक्ति (2) भोग्य सामग्री का बल अर्थात चल–अचल सम्पत्ति तथा अन्य साज–सामान (3) राजा के मंत्रियों का बल जो सदैव उसके सहयोगी एवं स्वामिभक्त होते है (4) अभिजात–बल अर्थात राजा, सेठ, साहूकार या अत्यधिक प्रभावशाली माता–पिता के घर जन्म का भी अपना बल, रूतबा दबादबा रखता है। उच्च हैसियत वाला होता है। प्रायः उक्त चार बलों पर ही अधिकाश मूर्ख लोग अधिक घमण्ड करते हैं। तथा उत्तम मानते हैं। किन्तु वे नहीं जानते कि उन चारों बलों से सर्वश्रेष्ठ (5) प्रज्ञा बल होता है। यदि मन्दबुद्धि को श्रेष्ठ धन धान्य पूर्ण सारी धरती भी प्राप्त हो जाए तो उससे कोई भी दूसरा प्रज्ञावान व्यक्ति अपनी प्रज्ञामयी वाणी, विचार एवं कर्मों से अभिभूत कर के उसका सर्वस्व प्राप्त कर लेगा। कोई भी राजा यदि प्रज्ञावान नही ंतो उसका राज नष्ट होगा। वह पराधीन होगा वह योग–क्षेम नहीं रख सकता। प्रज्ञा के सम्य् निर्णय होता है, ख्याति की वृध्दि होती है। प्रज्ञावान दुखी नहीं होता। धर्मार्थ से ही प्रज्ञालाभ होता है। जो संयम से जागकर आलस्य रहित हो कार्यरत रहता है उसका कर्म ही सफल व सुफलदायी होता है। राजा धर्माचरण करे। धर्माचरण से ही राज्य की सृखसमृद्धि वृद्धि होती है। जनता सुखी शान्त एवं न्यायप्रिय होती है। अराजकता का विनाश होता है। सुराज का सूरज उतरोत्तर अपनी घवल प्रकाश की तेजोमय किरणे चिरकाल तक विखराता है।

बुद्ध शासन में राजा का धम्माचारी होना प्रथम प्रतिबद्धता है। सारी प्रजा का आचरण–व्यवहार शान्ति व्यवस्था, धन–धान्य की उन्नति राष्ट्रीय नियंत्रण, राष्ट्रीय अस्मिता, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय गौरव–गरिमा राजा के शीलवान, धम्मवान, गहन–चिन्तक एव प्रज्ञावान होने पर ही निर्भर करता है।

आओ देखें हम कितने जागरूक हैं इन उपरोक्त गाथाओं में दी गई शिक्षाओं के प्रति। मेरा अपना शील ही मेरा हितकारी, रक्षक, कल्याणकारी एवं सुखदायी होगा। अन्य का नहीं। अन्य का शील हमें शान्ति सुख प्राप्त करने में सहायक अवश्य होगा किन्तु ध्यान रहे यह पारस्परिक है। एक तरफा नहीं। आओ हमसब मिलजुल इन आदर्शों को सच्चे वचन से सच्चे कर्मों से मूर्तिमान करें।

भवतु सब्बमंगलं।
स्वतंत्र चिन्तन का घोषणापत्र

1. किसी बात को इसीलिए मत मानो कि उसे तुमने स्वयं अपने कानों से सुना है।
2. किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि यह बात परम्परा से चली आ रही है।
3. किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि ऐससा ही करते आये हैं।
4. इसलिए भी किसी बात को इसलिए भी मत मानो किवह धर्म ग्रन्थों के अनुकूल है।
5. इसलिए भी मत मानो किवह तर्कसंगत है।
6. किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि वह न्यायसंगत है।
7. आकार–प्रकार में सुन्दर होने के कारण भी किसी बात को मत मानो।
8. आपको पसंद है, इसलिए भी किसी बात मत मानो।
9. यह बात किसी आकर्षक व्यक्ति ने कही है इसलिए भी उसे मत मानो।
10. श्रमण बौद्ध या जैन भिक्खु हमारे पूज्य है, यह बात उन्होंने की है यह सोचकर भी उसे मत मानना।

किसी बात को सुनो और उस पर विचार करो। जब स्वयं यह जान लो कि ये बातें अकुशल (बुरी) हैं, ये बातें दोष वाली हैं, ये बातें जानकारों व्दारा निन्दित हैं, ये बातें ग्रहण करने पर अहितकर हैं और दुखदायी हैं तो तुम लोग उन्हें छोड दो।

हे कालामो! ज्ब तुम स्वयं जान लो कि ये बातें कल्याणकारी हैं, दोष रहित हैं, विज्ञ–पुरूषों व्दारा प्रशंसित हैं, सम्पूर्ण रूप से ग्रहण करो और इस प्रकार सुख समृद्धि का जीवन यापन करो।

Moral Stories
(ENGLISH)

A KING'S PAINTING

Once upon a time, there was a Kingdom. The king there only had one leg and one eye, but he was very intelligent and kind. Everyone in his kingdom lived a happy and a healthy life because of their king. One day the king was walking through the palace hallway and saw the portraits of his ancestors. He thought that one day his children will walk in the same hallway and remember all the ancestors through these portraits.

But, the king did not have his portrait painted. Due to his physical disabilities, he wasn't sure how his painting would turn out. So he invited many famous painters from his and other kingdoms to the court. The king then announced that he wanted a beautiful portrait made of himself to be placed in the palace. Any painter who could carry out this should come forward. He would be rewarded based on how the painting turns up.

All the painters began to think that the king has only one leg and one eye. How can his picture be made very beautiful ? It is not possible and if the picture does not appear beautiful then the king will get angry and punish them. So one by one, all started to make excuses and politely declined to make a painting of the king. But suddenly one painter raised his hand and said that I will

make a very beautiful portrait of you which you will surely like. The king became happy found on hearing that the other painters got curious. The king gave him the permission and the painter started drawing the portrait. He then filled the drawing with paints. Finally, after taking a long time, he said that the portrait was ready !

All the courtiers, other painters were curious and nervous, thinking, How can the painter make the king's portrait beautiful because the king is physically disabled ? What if the king doesn't like the painting and gets angry ? But when the painter presented the portrait, everyone in the court, including the king, was stunned.

The painter made a portrait in which the king was sitting on the horse, on the one-leg side holding his bow and aiming the arrow with his one eye closed. The king was very pleased to see that the painter has made a beautiful portrait by cleverly hiding the king's disabilities. The King gave him a great reward.

Moral : We should always think positive of others and ignore their deficiencies. We should learn to focus on the good thing instead of trying to hide weaknesses. If we think and approach positively even in a negative situation, then we will be able to solve our problems more efficiently.

SOMETIMES JUST LET IT BE

Once Buddha was walking from one town to another town with a few of his followers. This was in the initial days. While they were traveling, they happened to pass a lake. They stopped there and Buddha told one of his disciples, "I am thirsty. Please get me some water from that lake there."

The disciple walked up to the lake. When he reached it, he noticed that some people were washing clothes in the water and, right at that moment, a bullock cart started crossing the lake right on the edge of it. As a result, the water became very muddy, very turbid. The disciple thought, "How can I give this muddy water to Buddha to drink ?!" So he came back and told the Buddha, "The water in there is very muddy. I don't think it is fit to drink".

So, the Buddha said, let us take a little rest here by the tree. After about half an hour, again Buddha asked the same disciple to go back to the lake and get him some water to drink. The disciple obediently went back to the lake. This time he found that the lake had absolutely clear water in it. The mud had settled down and the water above it looked fit to be had. So he collected some water in a pot and brought it to the Buddha.

The Buddha looked at the water, and then he looked up at the disciple and said, "See, You let the water be and the mud settled down on its own. You got a clear water. It didn't require any effort."

Moral : Your mind is also like that. When it is disturbed, just let it be. Give it a little time. It will settle down on its own. You don't have to put in any effort to calm it down. We can judge and take best decisions of our life when we stay calm.

THE WAY GOD HELPS

There was a small village by the river. Everyone lived happily and offered regular prayers at the village temple (Church). Once during the monsoon season, it rained heavily. The river started overflowing and the flood entered the village. Everyone started to evacuate their homes and set out to go to safe places. One man ran to the temple (Church). He quickly went to the priest's room and told him, "The flood water has entered into our homes and it is rising quickly. And water has also started entering the temple. We must leave the village as in no time it will sink under the water! Everyone has set out to go to tae safer place and you must come along." The priest told the man, "I am not an atheist like you all and I have a full faith in God. I trust God that he will come to save me. I will not leave the temple, You may go!" So, the man left.

Soon, the water level started rising and reached waist height. The priest climbed on the desk. After a few minutes, a man with boat came to rescue the priest. He told the priest, "I was told by the villagers that you are still inside the temple, so I have come to rescue you, please climb on the boat." But the priest again refused to leave giving him the same reason. So the boatman left.

The water kept rising and reached the ceiling, so the priest climbed to the top of the temple. He kept praying to God to save him. Soon the helicopter came, they dropped the rope ladder for the priest and asked him to climb on and get inside the helicopter so they could take him to safer place. But the priest refused to leave by giving him the same reason again! So the helicopter left to search and help others.

At last, when the temple nearly submerged under the water, the priest kept him head up and started complaining, "Oh Lord, I worshiped you for all my life and kept my faith in you! Why didn't you come to save me?!" God appeared in front of him and with a smile, he said, "Oh mad man, I came to save you three times! I came running to you to ask you to leave for the safest place with other villages, I came with a Boat, I came with a Helicopter! What is my fault if you didn't recognize me ?!"

The priest realized his mistake and asked for forgiveness. He got his chance to go to the safe place one more time, which he accepted.

Moral : In life, opportunities come unknowingly without any recognition. We fail to recognize it and keep complaining that life didn't give us the opportunity to lead a successful life. Always take every chance you get to make a better life.

DOES GOD CARE ?

In a town in West Bengal (a state in India) there lived two brothers, Ananta and Mukunda. Mukunda, who later became the great Saint Paramhansa Yogananda, was the younger brother of Ananta. Ananta, a man of the world, did not approve of Mukunda's spiritual occupations, since he worried for his brother's well being in the absence of worldly ambitions.

One day, their differences came to the fore. Mukunda said, "You well know Ananta, I seek my inheritance from God, our Heavenly Father." Ananta, an accountant by profession, quickly retorted, "Money first; God can come later! Who knows ? Life may be too long." Mukunda would not give in, "God first, money can come later! Who can tell ? Life may be too short."

The heated argument between the brothers ended with the elder brother throwing a challenge. He proposed to send Mukunda accompanied by his friend, Narendra, to the nearby city of Mathura by train, without any money or other provisions on them. As per the conditions of the challenge.

Mukunda and Narendra were not to take money from anyone or reveal their identity or bet to anyone. Despite all this, they were to return home before midnight. Narendra

would act as witness to make sure that Mukunda abided by the conditions of the best. Ananta was trying to test whether God would meet Mukunda's need for food and return fare. Mukunda welcomed the challenge. He had complete faith in God that He would take care of him during this unusual challenge and boarded the train to Mathura with the witness, Narendra.

It so happened that two strangers, who boarded their train, without a word from Mukunda or Narendra, led them to an ashram (hermitage). There they were offered a sumptuous feast, originally meant for some royal visitors, who had canceled their visit at the last moment. While resting after the meal, a cheerful young man approached them and offered to be their host for no apparent reason. Without Mukunda or Narendra revealing their identity or the challenge, the young man took them sightseeing around Mathura, mentioning how much of an honor it was to serve devotees to God in such a manner ! At the end of the day, when parting from them, the young man presented them with two train tickets to return to their town and some money, urging them not to refuse his offering. And so ended the test, where Mukunda and Narendra were well-provided for, despite not asking anyone for money, food or return tickets and not carrying any money with them.

The two reached home safely. Ananta was astonished. "I understand for the first time your lack of worldly ambitions!" he told the future Paramhansa. There

and then itself, he asked Mukunda to initiate him into spiritual practice.

Moral : Complete faith in God is the only currency one needs to make spiritual progress. However, in order to develop the kind of faith young Mukunda (Paramhansa Yogananda) had, one has to do regular spiritual practice.

THE EVIL YOU DO, REMAINS WITH YOU! THE GOOD YOU DO, COMES BACK TO YOU

A woman enjoyed the practice of baking bread for members of her family. She also made an extra one for a hungry passerby. She kept the extra bread on the window sill, for whosoever would take it away.

Everyday, a hunchback came and took away the bread. Instead of expressing gratitude, he muttered the following words as he went his way : "The evil you do, remains with you! The good you do, comes back to you!" This went on, day after day. Everyday, the hunchback came, picked up the bread and uttered the words : "The evil you do. remains with you! The good you do, comes back to you!" The woman felt irritated. "Not a word of gratitude," she said to herself. "Everyday this hunchback utters this jingle! What does the mean ?"

One day, exasperated, she decided to do away with him. "I shall get rid of this hunchback," she said. And what did she do ? She added poison to the bread she prepared for him ! However, as she was about to place the loaf on the window sill, her hands trembled. "What is this I am dong ?" she said to herself. Immediately, she threw the bread into the fire, prepared another one and placed it on the window sill. As usual, the hunchback came, picked up the bread and muttered the words : "The evil you do, remains with you!

The good you do, comes back to you!" The hunchback proceeded on his way, blissfully unaware of the war raging in the mind of the woman.

The woman had a son who had gone to a distant place to seek his fortune. For many months, she had no news of him and she prayed fervently for his safe return. That evening, there was a knock on the door. As she opened it, she was surprised to find her son standing in the dorrway. He had grown thin and lean. His garments were tattered and torn. He was hungry, starved and weak. As he saw his mother, he said, "Mom, it's a miracle I'm here. While I was but a mile away, I was so famished that I collapsed. I would have died, but just then an old hunchback passed by. I begged of him for a morsel of food, and he was kind enough to give me a whole bread. As he gave it to me, he said, "This is what I eat everyday. Today, I shall give it to you, for your need is greater than mine!"

As the mother heard those words, her face turned pale. She leaned against the door for support. She remembered the poisoned bread that she had made that morning. Had she not burnt it in the fire, it would have been eaten by her own son, and he would have lost his life! It was then that she realized the significance of the words : "The evil you do, remains with you! The good you do, comes back to you!"

Our actions and words are born from out thoughts. Every thought is like a seed with potential to give rise to

more such thoughts again. This is why, it is so important to be vigilant of our thoughts.

When we think thoughts of harming others, it is like tossing a dagger at the sky. Sooner or later if falls back on us. When we think thoughts of supporting others, it is like tossing fragrant flowers at the sky. Sooner or later they return to adorn us!

We can use the word "Cancel" in our mind every time our thoughts wander to subjects we do not wish to dwell on. It is a simple but effective remedy!

Just like the carpenter shapes wood, the wise shape their lives. Let us keep the powerful moral of this story in mind and mindfully shape a wonderful life.

THINKING OUT OF THE BOX

In a small Italian town, hundreds of years ago, a small business owner owed a large sum of money to a loan-shark. The loan-shark was a very old, unattractive looking guy that just so happened to fancy the business owner's daughter.

He decided to offer the businessman a deal that would completely wipe out the debt he owed him. However, the catch was that we would only wipe out the debt if he could marry the businessman's daughter.

Needless to say, this proposal was met with a look of disgust.

The loan-shark said that he would place two pebbles into a bag, one white and one black. The daughter would then have to reach into the bag and pick out a pebble. If it was black, the debt would be wiped, but the loan-shark would then marry her. If it was white, the debt would also be wiped, but the daughter wouldn't have to marry the loan-shark.

Standing on a pebble-strewn path in the businessman's garden, the loan-shark bent over and picked up two pebbles.

Whilst he was picking them up, the daughter noticed that he'd picked up two black pebbles and placed them

both into the bag. He then asked the daughter to reach into the bag and pick one. The daughter naturally had three choices as to what she could have a done :

1. Refuse to pick a pebble from the bag.
2. Take both pebbles out of the bag and expose the loan-shark for cheating.
3. Pick a pebble from the bag fully well knowing it was black and sacrifice herself for her father's freedom.

She drew out a pebble from the bag, and before looking at is 'accidentally' dropped it into the midst of the other pebbles. She said to the loan-shark;

"Oh, how clumsy of me. Never mind, if you look into the bag for the one that is left, you will be able to tell which pebble I picked." The pebble left in the bag was obviously black, and seeing as the loan-shark didn't want to be exposed, he had to play along as if the pebble the daughter dropped was white, and clear her father's debt.

Moral of the story : It's always possible to overcome a tough situation through out of the box thinking, and not give in to the only options you think you have to pick from.

CONTROL YOUR TEMPER

There was once a little boy who had a very bad temper. His father decided to hand him a bag of nails and said that every time the boy lost his temper, he had to hammer a nail into the fence.

On the first day, the boy hammered 37 nails into that fence.

The boy gradually began to control his temper over the next few weeks, and the number of nails he was hammering into the fence slowly decreased.

He discovered it was easier to control his temper than to hammer those nails into the fence. Finally, the day came when the boy didn't lose his temper at all. He told his father the news and the father suggested that the boy should now pull out a nail every day he kept his temper under control.

The days passed and the young boy was finally able to tell his father that all the nails were gone. The father took his son by the hand and led him to the fence.

"you have done well, my son, but look at the holes in the fence. The fence will never be the same. When you say things in anger, they leave a scar just like this one. You can put a knife in a man and draw it out. It won't matter how

many times you say I'm sorry, the wound is still there."

Moral of the story : Control your anger, and don't say things to people in the heat of the moment, that you may later regret. Some things in life, you are unable to take back.

PUPPIES FOR SALE

A shop owner placed a sign above his door that said : "Puppies For Sale."

Signs like this always have a way of attracting young children, and to no surprise, a boy saw the sign and approached the owner ;

"How much are you going to sell the puppies for ?" he asked.

The store owner replied, "Anywhere from $30 to $50."

The little boy pulled out some change from his pocket. "I have $2.37," he said. "Can I please look at them ?"

The shop owner smiled and whistled. Out of the kennel came Lady, who ran down the aisle of his shop followed by five teeny, tiny balls of fur. One puppy was lagging considerably behind. Immediately the little boy singled out the lagging, limping puppy and said, "What's wrong with that little dog ?"

The shop owner explained that the veterinarian had examined the little puppy and had discovered it didn't have a hip socket. It would always limp. It would always be lame.

The little boy became excited. "That is the puppy that I want to buy."

The shop owner said, "No, you don't want to buy that little dog. If you really want him, I'll just give him to you."

The little boy got quite upset. He looked straight into the store owner's eyes, pointing his finger, and said;

"I don't want you to give him to me. That little dog is worth every bit as much as all the other dogs and I'll pay full price. In fact, I'll give you $2.37 now, and 50 cents a month until I have him paid for."

The shop owner countered, "You really don't want to buy this little dog. He is never going to be able to run and jump and play with you like the other puppies."

To his surprise, the little boy reached down and rolled up his pant leg to reveal a badly twisted, crippled left leg supported by a big metal brace. He looked up at the shop owner and softly replied, "Well, I don't run so well myself, and the little puppy will need someone who understands !"

HAVING A BEST FRIEND

A story tells that two friends were walking through the desert. During some point of the journey they had an argument, and one friend slapped the other one in the face. The one who got slapped was hurt, but without saying anything, wrote in the sand ;

"Today my best friend *slapped me in the face."*

They kept on walking until they found as oasis, where they decided to take a bath. The one who had been slapped got stuck in the mire and started drowning, but the friend saved him. After he recovered from the near drowning, he wrote on a stone ;

"Today my best friend saved my life."

The friend who had slapped and saved his best friend asked him ;

"After I hurt you, you wrote in the sand and now, you write on a stone, why ?"

The other friend replied ;

"When someone hurts us we should write it down in sand where winds of forgiveness can erase it away. But, when someone does something good for us, we must engrave it in stone where no wind can ever erase it."

Moral of the story : Don't value the things you have in your life. But value who you have in your life.

THE PARABLE OF THE GOOD SAMARITAN

On one occasion an expert in the law stood up to test Jesus. "Teacher," he asked, "what must I do to inherit eternal life ?"

"What is written in the Law ?" he replied. "How do you read it ?"

He answered, "Love the Lord your God with all your heart and with all your soul and with all your strength and with all your mind"; and, 'Love your neighbor as yourself.'

"You have answered correctly," Jesus replied. "Do this and you will live."

But he wanted to justify himself, so he asked Jesus, "And who is my neighbor ?"

In reply Jesus said : "A man was going down from Jerusalem to Jericho, when he was attacked by robbers. They stripped him of his clothes, beat him and went away, leaving him half dead. A priest happened to be going down the same road, and when he saw the man, he passed by on the other side. So too, a Levite, when he came to the place and saw him, passed by on the other side. But a Samaritan, as he traveled, came where the man was; and when he saw him, he took pity on him. He went to him and bandaged his

wounds, pouring on oil and wine. Then he put the man on his own donkey, brought him to an inn and took care of him. The next day he took out two denarii and gave them to the innkeeper. 'Look after him,' he said, 'and when I return, I will reimburse you for any extra expense you may have.' "Which of these three do you think was a neighbor to the man who fell into the hands of robbers ?"

The expert in the law replied, "The one who had mercy on him."

Jesus told him, "Go and do likewise."

THE WOLF & THE CRANE

A Wolf had been feasting too greedily, and a bone had stuck crosswise in his throat. He could get it neither up nor down, and of course he could not eat a thing. Naturally that was an awful state of affairs for a greedy Wolf.

So away he hurried to the Crane. He was Sure that she, with her long neck and bill, would easily be able to reach the bone and pull it out.

"I will reward you very handsomely," said the Wolf, "if you pull that bone out for me."

The Crane, as you can imagine, was very uneasy about putting her head in a Wolf's throat. But she was grasping in nature, so she did what the Wolf asked her to do.

When the Wolf felt that the bone was gone, he started to walk away.

"But what about my reward!" called the Crane anxiously.

"What!" snarled the Wolf, whirling around. "Haven't you got it ? Isn't enough that I let you take your head out of my mouth without snapping it off ?"

Expect no reward for serving the wicked.

THE OAK & THE REEDS

A Giant Oak stood near a brook in which grew some slender Reeds. When the wind blew, the great Oak stood proudly upright with its hundred arms uplifted to the sky. But the Reeds bowed low in the wind and sang a sad and mournful song.

"You have reason to complain," said the Oak. "The slightest breeze that ruffles the surface of the water makes you bow your heads, while I, the mighty Oak, stand upright and firm before the howling tempest."

"Do not worry about us," replied the Reeds. "The winds do not harm us. We bow before them and so we do not break. You, in all your pride and strength , have so far resisted their blows. But the end is coming." As the Reeds spoke a great hurricane rushed out of the north. The Oak stood proudly and fought against the storm, while the yielding Reeds bowed low. The wind redoubled in fury, and all at once the great tree fell, torn up by the roots, and lay among the pitying Reeds.

Better to yield when it is folly to resist, than to resist stubbornly and be destroyed

THE MOTHER & THE WOLF

Early one morning a hungry Wolf was prowling around a cottage at the edge of a village, when he heard a child crying in the house. Then he heard the Mother's voice say :

"Hush, child, hush! Stop your crying, or I will give you to the Wolf!"

Surprised but delighted at the prospect of so delicious a meal, the Wolf settled down under an open window, expecting every moment to have the child handed out to him. But though the little one continued to fret, the Wolf waited all day in vain. Then, toward nightfall, he heard the Mother's voice again as she sat down near the window to sing and rock her baby to sleep.

"There, child, there! The Wolf shall not get you. No, no! Daddy is watching and Daddy will kill him if he should come near !"

Just then the Father came within sight of the home, and the Wolf was barely able to save himself from the Dogs by a clever bit of running.

Do not believe everything you hear.

THE BUNDLE OF STICKS

A certain Father had a family of Sons, who were forever quarreling among themselves. No words he could say did the least good, so he cast about in his mind for some very striking example that should make them see that discord would lead them to misfortune.

One day when the quarreling had been much more violent than usual and each of the Sons was moping in a surly manner, he asked one of them to bring him a bundle of sticks. Then handling the bundle to each of his Sons in turn he told them to try to break it. But although each one tried his best, none was able to do so.

The Father then untied the bundle and gave the sticks to his Sons to break one by one. This they did very easily.

"My Sons," said the Father, "do you not see how certain it is that if you agree with each other and help each other, if will be impossible for your enemies to injure you ? But if you are divided among yourselves, you will be no stronger than a single stick in that bundle."

In unity is strength.

THE TRAVELERS & THE SEA

Two Travelers were walking along the seashore. Far out they saw something riding on the waves.

"Look," said one, "a great ship rides in from distant lands, bearing rich treasures !"

The object they saw came ever nearer the shore.

"No," said the other, "that is not a treasure ship. That is some fisherman's skiff, with the day's catch of savoury fish."

Still nearer came the object. The waves washed it up on shore.

"It is a chest of gold lost from some wreck," they cried. Both Travelers rushed to the beach, but there they found nothing but a water-soaked log.

Do not let your hopes carry you away from reality.

KNOWLEDGE IS NOT REALIZATION

Once there were two bhikkhus of noble family who were good friends. One of them had learned the Tipitaka (the Teachings of Buddha are collectively termed as the Tipitaka) and was very proficient in reciting and preaching the sacred doctrine. He taught many other bhikkhus and became the instructor of eighteen groups of bhikkhus. The other bhikkhu after striving diligently and ardently, attained Arahant hood together with extraordinary knowledge in the course of Insight Meditation.

On one occasion, when the second bhikkhu came to pay homage to the Buddha at the Jetavana monastery, the two bhikkhus met. Not realizing that his friend had already become an Arahant. The master of the Tipitaka looked down on him, thinking that the old bhikkhu knew very little of the sacred Dhamma. So, he decided to ask him some questions on Dhamma. The Buddha knew about his unkind intention and he also knew that as a result of seeking to ridicule a noble disciple the learned bhikkhu would have to suffer.

So, out of compassion, the Buddha visited the two bhikkhus to prevent the learned bhikkhu from ridiculing his friend. The Buddha himself did the questioning. He put

questions on jhanas and maggas (higher achievement through meditation) to the master of the Tipitaka who could not answer them because he had not practiced what he had taught. The other bhikkhu, having practiced the Dhamma and having attained Arahant hood, could answer all the questions. The Buddha praised the one who had practiced and realized the Dhamma but not a single word of praise was spoken for the learned scholar.

The resident disciples could not understand why the Buddha had words of praise for the old bhikkhu and not for their learned teacher. The Buddha explained the matter to them saying that the learned bhikkhu who knows a great deal but does not live in accordance with the Dhamma is like a cowherd, who looks after the cows for wages, while the one who practices Dhamma is like the owner who enjoys the five kinds of produce of the cows. Thus. the scholar enjoys only the services rendered to him by his pupils but not the benefit of sainthood. The other bhikkhu, though he knows little and recites only a little Dhamma, having clearly comprehended the essence of it and having practiced it diligently, has eradicated craving, ill will and ignorance. His mind being totally freed from mental defilements and from all attachments of this world as well as to the next he truly reaps the benefits of sainthood or Perfection.

A BUTCHER WHO SUFFERED HERE AND HEREAFTER

Once in a village not far away from the Veduvana monastery, there lived a very cruel and hard – hearted pork butcher by the name of Cunda who slaughtered animals by torturing them. Cunda had been in this profession for many years and in all this he had not done a single meritorious deed. Before he died, he was in such great pain and agony that he was grunting and squealing and kept moving about on his hands and knees like a pig for several days. Then, after suffering physically and mentally, on the seventh day, he died and was reborn in a suffering state.

Some bhikkhus having heard the grunting and squealing coming from his house for several days, thought that Cunda must be busy killing more pigs. They remarked that Cunda was a very cruel and wicked man for he did not have a single thought of loving kindness and was also devoid of any compassion.

Upon hearing their remarks, the Buddha said, “Bhikkhus! Cunda has not been killing pigs. His past evil deeds have overtaken him. Because of the great pain he had to suffer before his death, he was acting and behaving in a very unnatural way. Today he died and was reborn in hell.”

The Buddha concluded his discourse by saying, 'The evil doer always suffers for the evil deeds done by him; he suffers in this world as well as in the next. There is no escape from the consequences of evil deeds.'

THE BUDDHA & HIS PHYSICIAN

On one occasion, Devadatta tried to kill the Buddha by pushing a big rock on him from the Vulture's Peak. The rock struck a ledge on the side of the mountain and a splinter struck the big toe of the Buddha. He was taken to the mango-grove monastery of Jivaka. There Jivaka, the renowned physician, attended to him and applied some medicine on the toe and bandaged it. Jivaka then left to see another patient in town, but promised to return and remove the bandage in the evening. When Jivaka returned that night, the city gates were already closed and he could not attend to the Buddha. He was very upset because if the bandage was not removed in time, the whole body would be affected and the Buddha would be very ill.

The Buddha knew that Jivaka would not be able to attend to him, so he asked venerable Ananda to rempve the bandage and found that the wound was healed. Jivaka came to the monastery early next morning to enquire whether he had felt great pain and distress the previous night. But the Buddha replied, 'Jivaka! Ever since I attained Enlightenment, I ha the ability to stop pain and distress at any time whenever I needed to do so'. Then the Buddha explained the nature of the mind of an Enlightened One.

THE GREAT OFFERING OF A POOR BRAHMIN

There was once a brahmin couple in Savatthi, who had only one outer garment between the two of them. As they had only one outer garment, both of them could not go out at the same time. So, the wife would go to the monastery during the day and the husband would go at night. One night, as the brahmin listened to the Buddha, his whole body became to be suffused with delightful satisfaction and he felt a strong desire to offer the outer garment to he was wearing to the Buddha. But he realized that if he were to give away the only outer garment he had, there would be none left for him and his wife. So he wavered and hesitated. Thus, the first and second watches of the night passed. Came the third watch and he said to himself, 'If I am hesitant, I will miss the opportunity of ending worldly suffering. I shall now offer my outer garment.' So saying, he placed that piece of cloth at the feet of the Buddha and cried out. 'I have won! I have won!

King Pasenadi of Kosala, who was in the audience, heard those words and ordered a courtier to investigate. Learning about the brahmin's offering to the Buddha, the king commented that the brahmin had done something which was not easy to do and so should be rewarded. The

king ordered his men to give him a piece of cloth as a reward for his faith and generosity. The brahmin offered that piece of cloth also to the Buddha, again the king rewarded him with two pieces of cloth. Again, he offered the two pieces of cloth to the Buddha. Whatever the king gave him (each time doubling the reward the brahmin offered to the Buddha. When the reward came to thirty-two pieces of cloth, the brahmin kept one piece for himself and another for his wife at the request of the king. He offered the remaining thirty pieces to the Buddha.

Then, the king again commented that the brahmin had truly performed a very difficult task and so must be rewarded fittingly. The king sent a messenger to the palace to bring two pieces of very expensive velvet blanket and gave them to the brahmin. This time the brahmin made two canopies and offered one to the Buddha and kept the other for his own use. When the king next went to the Jetavana monastery, he saw the velvet canopy and recognized it as the offering made by the brahmin and he was very pleased. This time he made another reward to him.

When the bhikkhus heard about this, they asked the Buddha, 'How is it that. In the case of this brahmin, a good deed done at present bears fruit immediately?' the Buddha replied, 'If the brahmin had offered his outer garment in the first watch of the night, he would have been rewarded more; since he made his offering only during the last watch

of the night, he was rewarded less. So, when one wants to give in charity, one should do so quickly; if one hesitates the reward comes slowly and only sparingly. Also, if one is too slow in doing good deeds, one may not be able to do it at all, for the mind tends to take delight in doing evil.'

NOBODY CAN ESCAPE FROM THE EFFECTS OF EVIL KARMA

A group of bhikkhus were on their way to see the Buddha and they stopped at a village on the way. Some people were cooking alms food for them when one of the houses caught fire and a ring of fire flew up into the air. At that moment, a crow came flying, got caught in the ring of fire and dropped down dead. The bhikkhus seeing the dead crow, observed that only the Buddha would be able to explain for what evil deed this crow had to die in this manner. After taking alms food they continued on their journey.

Another group of bhikkhus were traveling in a ship; they too were on their way to see the Buddha. When they were in the middle of the ocean the ship could not be moved. So, lots were drawn to find out who the unlucky one was; three times the lot fell on the wife of the skipper. Then the skipper said sorrowfully, 'Many people should not die on account on account of this unlucky woman. Tie a pot of sand to her neck and throw her into the sea so that I will not see her.' The woman was thrown into the sea as instructed by the skipper so that the ship could move on. On arrival at their destination, the bhikkhus disembarked and continued on their way to the Buddha. They also intended to ask the Buddha due to what evil karma the unfortunate woman was thrown overboard.

A third group of bhikkhus were also on their way to see The Buddha. On the way, they enquired at a monastery whether there was any suitable place for them to take shelter for the night in the neighborhood. They were directed to a cave, and there they spent the night, but in the middle of the night a large boulder slipped off from above and effectively closed the entrance. In the morning the bhikkhus from the nearby monastery coming to the cave saw what had happened and they went back to seek help from the village. With the help of those people they tried to move the boulder, but it was of no avail. Thus, the bhikkhus were trapped in the cave without food or water for a few days. On the seventh day, the boulder miraculously moved by itself, and the bhikkhus came out and continued their journey to the Buddha. They too intended to ask the Buddha due to what previous evil deed they were thus shut up for a few days in a cave.

The three groups of bhikkhus met on the way and together they went to the Buddha. Each group related what they had seen or experienced on their journeys.

The Buddha's answer to the first group: 'Bhikkhus, once there was a farmer who had an ox. The ox was lazy and also very stubborn. It could not be coaxed to do any work; it would just lie down chewing the cud or else go to sleep. The farmer lost his temper many times on account of this lazy animal. So, in anger, he tied a straw rope round the neck of the ox and set fire to it, and the ox died. On account of this evil deed the farmer has suffered for a long time and in

serving out the remaining part of the bad karma, he has been burnt to death in the last few previous existences.'

The Buddha's answer to the second group: 'Bhikkhus, once there was a woman who had a dog. Whatever she did and wherever she went the dog always followed her. As a result, some young boys would poke fun at her. She was very angry and felt so ashamed that she planned to kill the dog. She filled a pot with sand, tied it round the neck of the dog and threw it into the water; and the dog was drowned. On account of this evil deed that woman had suffered for a long time and in serving the remaining part of the bad effect, she had been thrown into the water to be drowned.

The Buddha's answer to the third group: 'Bhikkhus, once several cowherds saw an iguana going into the mound and for fun, they closed all the outlets of the mound. After closing the outlets, they went away, completely forgetting the iguana that was trapped in the mound. Only after seven days, they remembered what they had done and hurriedly returned to the scene of their mischief and let out the iguana. On account of this evil deed, you seven had been imprisoned together for seven days without any food.'

Then, a bhikkhu remarked, 'O indeed! There is no escape from evil consequences for one who has done evil, even if he were in the sky, or in the ocean, or in a cave.' The Buddha replied, 'Yes, bhikkhu, you are right; even in the sky or anywhere else, there is no place which is beyond the reach of the consequences of evil.'

BUILDING BRIDGES

Once upon a time two brothers who lived on adjoining farms fell into conflict. It was the first serious rift in 40 years of farming side by side, sharing machinery and trading labor and goods as needed without a hitch. Then the long collaboration fell apart. It began with a small misunderstanding and it grew into a major difference and finally it exploded into an exchange of bitter words followed by weeks of silence. One morning there was a knock on John's door.

He opened it to find a man with a carpenter's toolbox. "I'm looking for a few days work," he said. "Perhaps you would have a few small jobs here and there. Could I help you?"

"Yes," said the older brother. "I do have a job for you. Look across the creek at that farm. That's my neighbor, in fact, it's my younger. Last week there was a meadow between us and he took his bulldozer to the river levee and now there is a creek between us. Well, he may have done this to spite me, but I'll go him one better. See that pile of lumber curing by the barn? I want you to build me a fence - an 8-foot fence - so I won't need to see his place anymore. Cool him down, anyhow."

The carpenter said, "I think I understand the situation. Show me the mulfand the post-hole digger and I'll be able to do a job that pleases you."

The older brother had to go to town for supplies, so he helped the carpenter get me materials ready and then he was off for the day. The carpenter worked hard all that day measuring, sawing, nailing. About sunset when the farmer returned, the carpenter had just finished his job. The farmer's eyes opened wide; his jaw dropped.

There was no fence there at all. It was a bridge - a bridge stretching from one side of the creek to the other! A fine piece of WORK handrails and all - and the neighbor, his younger brother, was coming across, his hand outstretched.

"You are quite a fellow to build this bridge after all I've said and done."

The two brothers stood at each end of the bridge, and then they met in the middle, taking each other's hand. They turned to see the carpenter hoist his toolbox on his shoulder. "No, wait! Stay a few days. I've a lot of other projects for you," said the older brother.

“I'd love to stay on," the carpenter said, "but, I have many more bridges to build."

BE GRATEFUL

A rich landowner named Carl often rode around his vast estate so he could congratulate himself on his great wealth. One day while riding around his estate on his favorite horse, he saw Hans, an old tenant farmer. Hans was sitting under a tree when Carl rode by.

Hans said, 'I was just thanking God for my food.'

Carl protested, 'If that is all I had to eat, I wouldn't feel like giving thanks.'

Hans replied, 'God has given me everything I need and I am thankful for it.'

The old farmer added, 'It is strange you should come by today because I had a dream last night. In my dream a voice told me....The richest man in the valley will die tonight.' I don't know what it means, but I thought I ought to tell you.'

Carl snorted, 'Dreams are nonsense,' and galloped away, but he could not forget Hans' words...The richest man in the valley will die tonight.

He was obviously the richest man in the valley, so he invited his doctor to his house that evening. Carl told the doctor what Hans had said. After a thorough examination,

the doctor told the wealthy landowner, 'Carl, you are as strong and healthy as a horse. There is no way you are going to die tonight.'

Nevertheless, for assurance, the doctor stayed with Carl, and they played cards through the night. The doctor left the next morning and Carl apologized for becoming so upset over the old man's dream.

At about nine o'clock, a messenger arrived at Carl's door.

'What is it?' Carl demanded.

The messenger explained, 'It's about old Hans. He died last night in his sleep.'

You don't need money to be rich, be grateful for what you have in life and you will feel happier.

DIFFERENT CULTURES

Amy's school needed to have a fundraiser so they could earn money to buy more computers. Amy knew that many of her classmates' families were from different countries around the world. They had many special traditions, spoke many different languages and ate many different types of foods.

Amy had a brilliant idea for a fundraiser! She suggested that every student could bring in their favorite dish and hold an ethnic dinner night. She knew parents and members of the community would be glad to pay money in order to try foods from all over the world!

"That's a great idea," Amy's teacher said.

“Let's call it 'Dinner around the World'."

Amy brought in her favorite meal, chicken with mashed potatoes. Her friend Amina was from Ethiopia, an African country. She brought in stewed meat with spices over rice pilaf with Ethiopian bread. Ibrahim, from Morocco, brought a dish of spiced grilled lamb over white rice with fried eggplant and hummus with pita bread.

Juan, from Mexico, brought chicken fajitas with Spanish rice and tortilla chips with cheese dip. Rajat, whose

family was from India, brought in chicken curry over rice with raita, a sauce of yogurt mixed with cucumber. Anita, a vegetarian, brought a meal with no meat. She brought lentil soup, dinner rolls and a salad.

The fundraiser was a great success. Everyone enjoyed seeing, smelling and tasting foods from so many different cultures.

GOOD COMPANY AND BAD COMPANY

This Short Story Good Company and Bad Company is quite interesting for all people. Enjoy reading this story.

Two parrots had built their nest on a banyan tree. The female parrot laid two eggs in the nest. After sometime, the eggs hatched. Two chicks came out of them. The parent birds took good care of them. After a few weeks, the young birds were able to fly for some distances.

The father bird said, “We have taken good care of our young ones. We have fed them well too. They have played together. They have learned to fly. Now they can take care of themselves. Let us slowly leave them to decide on their own."

Every morning the parent birds flew out to fetch food for the young birds. Then they returned in the evening with food for their young children. Thus, their lives went on for a while.

A hunter saw this behavior of these birds. He learned that the old birds went out in the morning. He decided to catch the young birds after the old birds would go away in the morning. As planned, he caught the young birds. The young birds struggled their best to free themselves from the clutches of the hunter. One of the two young birds

escaped from the hunter. The other bird was taken in a cage by the hunter to his house.

“I caught two birds. But I lost one parrot," said the hunter to his children. And he further added to his children, “Keep this parrot safely in the cage and play with this parrot."

The hunter's children played with the parrot. Very soon the parrot in the house of the hunter learnt to speak few words. The children said to their father, “Dad, our parrot has learnt to say a few words."

The other parrot flew away. It had escaped from the hunter. It flew for some time. Then it came to a hermitage. Some holy men lived in the hermitage. They did not do any harm to the young parrot. The young parrot stayed there. It listened to their talk. It learnt to say a few words.

A certain traveler was walking near the hunter's hut. He was tired. He sat near the hut. He heard the parrot speak. It said, “Fool, why have you come here? I will cut your throat."

The traveler was very sorry to hear such bad words. He got up immediately. He left the place in a hurry. Then he walked for some time and reached the hermitage. A parrot was sitting on a tree near the hermitage.

The parrot spoke, “Welcome, traveler. Welcome to this hermitage. We have a lot of good fruits in this forest. Eat whatever you like. The holy men will treat you well."

The traveler was surprised. He said to the parrot. “I met a young parrot near a hunter's hut. It spoke badly. I left the place immediately. Now I have met you. You speak so well. Your words are kind and gentle. Both you and the other bird are parrots. Then why is this difference in your language?”

At this statement, the parrot in the hermitage guessed that the other parrot was none other than its brother. The hermitage parrot said, “Traveler, the other parrot is my brother. But we have lived in two different places. My brother has learnt the hunter's language. But I have learnt the language of holy people. It is the company that shapes your words and deeds."

Good company helps you learn good things. Bad company makes you learn bad things.

OBSTACLES OR OPPORTUNITIES

Long ago, in ancient times, a King had a boulder placed on a roadway. He then hid himself and watched to see if anyone would move the boulder out of the way. Some of the king's wealthiest merchants and courtiers came by and simply walked around it. Many people loudly blamed the King for not keeping the roads clear. But none of them did anything about getting the stone out of the way. A peasant then came along carrying a heavy load. Upon approaching the boulder, he laid down his burden and tried to push the stone out of the road. After much pushing and heaving, he finally succeeded.

After the peasant went back to pick up his load, he noticed a purse lying in the road where the boulder had been. The purse contained many gold coins and a note from the King explaining that the gold was for the person who removed the boulder from the roadway. Every obstacle in our way brings opportunities to make our life better. Some complain about the obstacles along their path. Others create opportunities through their generous spirit and a willingness to act.

TENALI RAMA AND THE THIEVES

One calm night, Tenali Rama was resting at home. The moon was shining brightly. The cool breeze blew gently.

Suddenly, Tenali Rama saw somebody moving from the nearby bushes. He could see two shadowy figures in the dark, hiding themselves behind the bushes. Tenali Rama concluded them to be thieves and decided to teach them a lesson.

He went inside his house and spoke to his wife, “Listen Dear…."

He continued loudly, “We need to safeguard all our valuables from theft. Bring a metal box."

The thieves who heard all these words smiled at each other happily.

Tenali Rama then whispered to his wife about his plan. He asked her to bring some bricks and put them in the metal box. He carried the metal box on his head and took it to the well in the backyard.

He kept the box on the wall of the well and said, “My dear wife….We must be careful. Thieves are waiting to steal our wealth. I want to safeguard the jewels and the money from them. This is the safest place in our house to safeguard

our wealth." Saying these words to his wife, he dropped the box into the well. The box fell down into the water with a loud noise

S.....p.....l.....a.....s.....h.....!

Tenali Rama and his wife slept peacefully.

The thieves watching all this hugged each other happily.

AT midnight, the thieves went near the well and looked into it. The well was deep and had a lot of water. They could not jump into it. So, both of them decided to drain the well.

So, they drew water with a bucket from the well and poured it into the nearby garden. They had to do it quietly.

Throughout the night, they drew water from the well. They became tired. Further they hardly drain the well. They sat for a while to take rest.

At dawn, Tenali Rama awoke and came near the well. On seeing him both the thieves trembled in fear.

Tenali Rama spoke to them gently, “Dear Brothers! Thank you so much for watering my plants all through the night! I want to reward both of you in the king's palace for the services you have rendered to me."

The thieves were terribly shocked and ran away from the house of Tenali Rama.

GOOD AND EVIL

He pushed his wife to save himself from a sinking cruise ship. But the reality is priceless. A cruise ship met with an accident at sea. On the ship was couple who, after having made their way to the lifeboat, they realized that there was only space for one left. At this moment, the man pushed the woman behind him and jumped into the lifeboat himself. The lady stood on the sinking ship and shouted one sentence to her husband.

The teacher stopped and asked, “What do you think she shouted?"

Most of the students excitedly answer, “I hate you. I was blind."

Now the teacher noticed a boy silent throughout, she got him to answer and he replied, “Teacher I believe, she would have shouted, Take care of our child."

The teacher was surprised, asking, “Have you heard this story before?"

The boy shook his head and said, “But, that is what my mom said to dad before she died to disease."

The teacher lamented, “The answer is right."

The cruise sunk. The man went home and brought

up their son single-handedly.

Many years later after the death of the man, The son happened to read the diary of his father.

It turns out that when the parents went on to the cruise ship, the mother was already diagnosed with terminal illness.

At the critical moment, the father rushed to the only chance of survival.

He wrote in his diary, “How I wished to sink to the bottom of the sea with you, but for the sake of our son, I can only let you live forever below the sea along."

The story was finished. The class was silent.

The teacher knew that the students had understood the moral of the story….That of the GOOD and EVIL in the world, there are many complications which are hard to understand….which is why we should never focus only on the surface and judge others without understanding them first.

Those who like to pay the bill do so not because they are loaded, but because they value friendship over money.

Those who take initiatives at work do so not because they are stupid, but because understand the concept of responsibility.

Those who are willing to help you do so not because

they owe you anything, but because they see you as a true friend.

Those who often text you do so not because they have nothing better to do, but because you are in their heart.

One day all of us will get separated from each other. We will miss the conversations of everything and nothing.... the dreams that we had.

The days will pass by, months, years, until this contact becomes rare.

One day our children will see our pictures and ask, “Who are these people?

At that time, we will smile with invisible tears and you will say.... It was them I had my best days of my life with.

SACRIFICIAL SERVICE

One stormy night many years ago, an elderly man and his wife entered the lobby of a small hotel in Philadelphia. Trying to get out of the rain, the couple approached the front desk hoping to get some shelter for the night.

“We'd like a room, please," they husband requested.

The clerk, a friendly man with a winning smile, looked at the couple and explained that there were three conventions in town. “All of our rooms are taken' the clerk said.

“But I can't send a nice couple like you out in the rain at one o'clock in the morning. Would you perhaps be willing to sleep in my room? It's not exactly a suite, but it will be good enough to make you folks comfortable for the night."

When the couple declined, the clerk insisted, “Don't worry about me; PH make out just fine," he told them.

So, the couple agreed to spend the night in his room. As he paid his bill the next morning, the elderly man said to the clerk, “You're an exceptional man. Finding people who are both friendly and helpful is rare these days. You are the kind of manager who should be the boss of the best hotel in

the United States. Maybe someday I will build one for you."

Two years passed. The clerk was still managing the hotel in Philly when he received a letter from the old man. It recalled that stormy night and enclosed was a round-trip to New York, asking the young man to pay him a visit. The old man met him in New York and led him to the corner of Fifth Avenue and 34th Street. He then noted to a great new building there, a palace of reddish stone, with turrets and watchtowers thrusting up to the sky.

“That," he said, “is the hotel I'd like you to manage."

That old man's name was William Waldorf Astor and the magnificent structure was the original Waldorf-Astoria Hotel.

The clerk who became the first manager was George C Boldt.

This young clerk never foresaw how his simple act of self-less service would lead him to become the manager of one of the world's most glamorous hotels. The way to the top with people is not just through service. It's through extravagant, sacrificial service.

When someone goes out of their way to help you, it makes all the difference in the world.

THE ANT AND THE DOVE

One hot day, an ant was searching for some water.

After walking around for some time, she came to a spring. To reach the spring, she had to climb up a blade of grass.

While making her way up, she slipped and fell into the water. She could have drowned if a dove up a nearby tree had not seen her.

Seeing that the ant was in trouble, the dove quickly plucked off a leaf and dropped it into the water near the struggling ant. The ant moved towards the leaf and climbed up there. Soon it carried her safety to dry ground.

Just at that time, a hunter nearby was throwing out his net towards the dove, hoping to trap it. Guessing what he was about to do, the ant quickly bit him on the heel.

Feeling the pain, the hunter dropped his net. The dove was quick to fly away to safety.

One good turn deserves another.

THE BRAHMIN AND HIS ENEMIES

Long ago, a poor Brahmin lived with his family in a small house. His disciples would help him with food and clothes. He somehow managed to pass his days.

One day, the Brahmin received two calves as a gift from one of his disciples. He was overjoyed. Though he had difficulty in arranging for fodder and grain for the calves, he managed to feed the two calves. Years passed by and the calves grew up into two bullocks.

A thief had seen the bullocks. “The foolish Brahmin does not even know the proper use of these bullocks. I will steal the bullocks and sell them," he thought.

That evening, the thief started for the Brahmin's house. While on his way, the thief was stopped by a fierce demon. “I am hungry. I will eat you," said the demon, in a thundering voice. “Wait! Wait, dear friend! I am a thief I am on my way to the Brahmin's house to steal his bullocks. You can eat the Brahmin instead of me," said the thief.

The demon agreed. The thief and the demon proceeded towards the Brahmin's house. Reaching the house of the Brahmin, the thief said, “Let me take the bullocks and go. Then you can eat the Brahmin."

“No! Let me eat the Brahmin first. I am hungry," roared the demon. The two started to quarrel.

The noise woke up the Brahmin. As soon as he saw the demon, he started chanting some mantras. The demon uttered a sharp cry, “AAIEE!" and disappeared.

Then the Brahmin got hold of a thick stick, “You tried to steal my bullocks, did you?" said the Brahmin. And he thrashed the thief. Thus, the Brahmin saved himself from the demon and eventually punished the thief.

The Brahmin and his Enemies were separated from each other.

THE FOUR SONS

There lived an old man in a village. He had four sons. In spite of all his efforts, the old man could not make his sons earn for their living. In addition, they were always fighting among themselves.

The old man thought of a plan. He called his sons and said, “Look my dear sons, in the barren land we have at the farmyard, there is a hidden treasure. If you should work together, you may find it."

In a wish to find the treasure the four sons worked hard by digging and digging all through the land. They got frustrated and returned to their father.

“There is no treasure in the land. They complained to their father.

“Now that you have softened the land. Why should not you cultivate it?" was the reply of their father to their query.

Off went the sons. Soon the whole barren land was rich crops.

“This is the real treasure my sons" said the now proud father. Hard-work always is fruitful. The quarreling sons then on lived in harmony and became rich soon.

THE FRAGRANCE

In a small town lived a wealthy merchant. He was very kind and charitable. He had a son, who had unfortunately fallen into a bad company. Many times the merchant advised his son not to go with the bad company. But all in vain. “Please, do not advise me what to do, my father. I know what is good for me and I know what to do," said the son.

One day, a great saint came to the town. The merchant went to the saint, sought his blessings and said, “My spoilt son is the only cause of my worry. Please help me."

After few minutes of contemplation, the saint replied, “Send your son to my Ashram tomorrow morning. I will talk to him."

Next morning, the merchant sent his son to the Ashram of the saint. There the saint asked the son to pluck a flower of rose from the garden of the Ashram. The son did as asked by the saint. Then the saint asked the son,"Smell it and feel its fragrance, my son." The boy did so. Then saint showed the son a sack of wheat said, “Keep the rose near the sack." The boy followed the instructions.

After an hour, the saint asked the boy to smell the

rose again. “How does it smell now?" the saint asked the boy. The boy smelt the rose and said, “It smells as good as before." Then the saint said, “Hmm! Now keep the rose near this sack of jaggery." The boy did so.

After an hour, the saint asked the boy to smell the rose again. “Is there any change in the fragrance?" the saint asked the boy. “No. it smells as fresh as before," replied the boy.

Then the saint said, “Boy, you should be like this rose, giving the fragrance to everyone but at the same time not letting the bad smell rub on to you from anyone. Your good qualities are your strength. You should not lose them in bad company."

The boy understood the saint's words and wisdom. “I am grateful to you, O Saint, for opening my eyes," said the merchant's son.

From that day on wards, he was honest and charitable like his cultured father.

THE IRON BOX

Mohan Das was the son of a rich businessman. When his father died, Mohan Das was left with an iron box with valuables in it. One day, Mohan Das had to go to the city on some work. So, he took the iron box and handed it over to his moneylender friend. His name was Ramasewak.

“Please keep this box. My father gave it to me. I will return from city after few days and collect it from you," said Mohan Das to Ramasewak.

“You do not have to worry. I will keep this box safely," said Ramasewak.

Mohan Das started off his journey happily. He knew that his valuable iron box was safe with Ramasewak. A few days later he returned. He went to his friend Ramasewak and asked for the iron box. Ramasewak pretended to look a little surprised, “Oh, the iron box! The rats ate it up. I just could not stop them," he said.

Mohan Das realized that his friend had become greedy and dishonest. Ramasewak was trying to cheat him. Being an intelligent man, he kept quiet. “I must figure out a way to get my iron box back from Ramasewak," thought Mohan Das.

Next day, Mohan Das went to Ramasewak and said, “Friend! Can you send your son with me? I need someone to look after my property."

Ramasewak thought for a while. He brooded. “Mohan Das seems to be a fool. Maybe he will reward my son for looking after his property," thought Ramasewak. Then, immediately he agreed and sent his son with Mohan Das.

Next morning, Mohan Das came running to Ramasewak and said, “Dear friend, a terrible thing has happened. A hawk has carried your son away."

Ramasewak was furious and demanded, “How can a hawk carry off my son?"

“In the same way as the rats can eat up the iron box," answered Mohan Das.

“I am sorry, my friend. I realize my mistake," Ramasewak said with a bit of concern in his voice. He felt ashamed of having tried to cheat his friend. He gave the box back to his friend. Both of them were happy and remained good friends forever.

THE MAGIC POT

Long, long ago there lived an old woman who sold the best soup in the market.

It was chicken soup.

Nobody knew the old woman's name. Nobody knew where she lived.

Nobody knew why her soup was always the best in the market and why it was so hot.

But people did not think about that. They bought the soup and ate it.

Every morning the old woman came to the market square. She carried a big black pot of hot chicken soup on her head. Then she sat down under a tree and it did not take her long to sell her soup.

There lived a small boy not far from the market square. His name was Kalari. He liked the soup very much. He wanted to know where the old woman came from.

One day when the old woman put her empty pot on her head and left the market square. Kalari followed her. But she did not see him.

They went a long, long way. They climbed up a high

hill. Evening came. Kalari was afraid. But he went on.

At last the woman came to a little hut on that high hill. There stood a very large pot. "How big the pot is," thought Kalari.

The woman went into the hut. Kalari went up to the pot and looked into it. It was empty. Then the woman came out of the hut.

Kalari quickly hid himself. The woman came up to the large pot. Then she began to sing.

Magic pot, magic pot make hot soup for me. Make hot soup for me.

Make soup with Chicken. Make soup with Chicken.

Make this soup for me to sell. Make this soup for me to sell.

And for people to buy and for people to buy...

Magic pot, magic pot!

Very soon the soup was ready. Steam came out of the pot. The smell of the soup was very good and Kalari was very hungry.

Then the old woman went back into her hut. Kalari came up to the pot. He looked under it. There was no fire there. But the pot was full of hot chicken soup!

"I must have some of it. I am so hungry!" Kalari said to himself and put his hand into the pot to take a piece of

chicken. But suddenly the old woman came out of her hut. She saw Kalari with his hand in the pot.

"Oh, oh, oh!" she cried. "Oh, oh, oh!"

Kalari ran down the hill as quickly as he could. The old woman ran after him. But she could not catch him. Kalari ran and ran and at last came home.

He told his parents about the old woman on the hill and her magic pot. They looked at the hill and saw steam there.

Yes, we see the steam of the magic pot," they said.

From that day on the old woman stopped coming to the market with her soup. Nobody went up that high hill to see her. They were afraid of the old woman.

But now, when people see clouds round the hill, they say, "Look! There is the steam from the magic pot."

THE IGNORANT MAN

This Short Story The Ignorant Man is quite interesting for all the people. Enjoy reading this story.

There was a village in a kingdom. There was living a milkman. His name was Deenu. He had built his hut far away from his village, in the woods. He loved the quietness of the woods rather than the noisy atmosphere of the village. He lived in his hut with his two cows. He fed them well and took proper care of them. Everyday he took the two cows to a nearby lake to bath them. The two cows gave more milk. With the milk that the two cows gave, he earned enough money to live happily.

Deenu was an honest man. Though he was content, at times he would be restless. “There is so much wrong and evil in this world. Is there nobody to guide the people?" this thought made his sad every now and then.

One evening, the ignorant man, Deenu was returning home after selling milk in the village. He saw a saint sitting under a tree and meditating. He slowly walked up to him and waited for the saint to open his eyes. He was happy to be with the saint for some time. He decided to wait there itself till the saint opened his eyes.

After a while, the saint slowly opened his eyes. He was surprised to see a man patiently sitting beside him.

“What do you want?" asked the saint humbly.

“I want to know what the path to Truth and Piety is? Where shall I find Honesty?" asked Deenu.

The saint smiled and said, “Go to the pond nearby and ask the fish the same question. She will give you the answer."

Then as asked to do, the ignorant man, Deenu went to the nearby pond and asked the same question to the fish. The fish said, “O kind man! First, bring me some water to drink." Deny was surprised. He said, “You live in water. But you still want water to drink? How strange!"

At this moment, the fish replied, “You are right. And that gives you the answer to your question as well. Truth, Piety and honesty are inside the heart of a man. But being ignorant, he searches for them in the outer world.

Instead of wandering here and there, look within yourself and you will find them."

This gave an immense satisfaction to Deenu. He thanked the fish and walked home a wiser man. He changed the way in which he saw this world as well as himself. From that day, Deenu never felt restless.

He took his best to carry this massage to the rest of his fellow human beings. All his friends accepted him as their master and consulted him to overcome their mental problems. He led them properly.

THE PALACE AND THE HUT

King Vikramaditya was known for his justice and kindness. Even Gods sought his help in setting issues. In his kingdom, no one was unhappy. His people loved him and were proud of him.

Once, the Vikramaditya decided to build a palace on the riverbank. He ordered his ministers to survey the site and start the work. The laborers were put to work and in a few days the palace was ready. Before bringing the King to show the palace, the minister decided to take a final look.

“Splendid!" the minister exclaimed, looking at the palace. Then suddenly his eyes fell on something and he shouted, “What is that? I did not see that before." All the laborers and the soldiers turned around. There was a hut just a few steps away from the palace gate. “What is this hut doing here?" shouted the minister and added, “And whom does it belong to?”

“Sir, it belongs to an old woman. She has been living here for a long time," replied a soldier.

The minister walked up to the hut and spoke to the old lady. “I want to buy your hut. Ask for anything," he said.

“I am sorry, Sir. I cannot accept your offer. My hut is

dearer to me than my life. I have lived in it with my late husband and I want to die in it," the old lady said.

The minister tried to tell her that her hut would spoil the charm of the newly constructed palace. But the old lady was strong in her stance and she was ready to face any consequences and any punishment. She refused to sell her hut to the King. The matter was then taken to the King.

The wise and generous king thought for a while, and then said, “Let the old lady have her hut where it is. It will only add to the beauty of the new palace." Then turning to the minister, the King said, “Let us not forget that what seems ugly to us may be precious to someone else.”

The people then realized why their king was so highly respected by all the people and by all other neighboring kingdoms.

सुभासितानि

निवडक धम्मपद

१. ज्याप्रमाणे चांगल्या प्रकारे न शाकारलेल्या घरात पावसाचे पाणी शिरते, त्याप्रमाणेच ध्यान-भावना नसलेल्या चित्तात राग प्रवेश करतो. (यमकवग्गो)

२. ज्याप्रमाणे चांगल्या प्रकारे शाकारलेल्या घरात पावसाचे पाणी शिरत नाही, त्याप्रमाणेच ध्यान भावनांनी अभ्यस्त असलेल्या चित्तात राग प्रवेश करीत नाही. (यमकवग्गो)

३. जेवढे भले आई-वडील किंवा इतर बंधु-बांधव करू शकत नाहीत, त्याहुन जास्त हित योग्य मार्गावर लागलेले चित्त करते. (चित्तवग्गो, गा. क्र. ११)

४. फुले, चंदन, नगर किंवा चमेली वगैरे फुलांचा सुगंध वाऱ्या विरुद्ध जात नाही, पण सज्जनांचा सुगंध वाऱ्या विरुद्ध ही जातो, सत्पुरुष सगळ्याच दिशात सत्कार्याचा सुगंध पसरवितो.

५. दुस्सील आणि एकागृताविहिन माणसाच्या शंभर वर्षे जिवंत राहण्यापेक्षा शीलवान आणि एकाग्रमन माणसाचे एक दिवसाचे जीवन श्रेष्ठ आहे. (सहस्सवग्गो)

६. दंडाला सर्वच भीतात, सर्वांना जीवन प्रिय आहे. (सर्वांना) आपल्यासारखे समजून न (कोणास) मारावे, ना कुणाचा घात करावा. (दण्डवग्गो)

७. उत्तम पुरुषाचा (जन्म) दुर्लभ आहे, तो सर्व ठिकाणी उत्पन्न होत नाही, तो धीर (पुरुष) जिथे उत्पन्न होतो, त्या कुळात सुखाची वृद्धी

होते. (बुद्धवग्गो)

८. बुद्धांचा जन्म सुखदायक आहे, सध्दम्माचा उपदेश सुखदायक आहे, संघात ऐक्य सुखदायक आहे आणि एकतायुक्त होऊन तप करणे सुखदायक आहे. (बुद्धवग्गो)

९. प्रियाने शोक उत्पन्न होतो, प्रियतेपासून भय उत्पन्न होते. यापासून मुक्त माणसास शोक नाही, मग भय कुठून होणार ? (पियवग्गो)

१०. जे धीर पुरुष शरीराने संयत, वाणीने संयत आणि मनाने संयत राहतात, तेच पूर्णपणे संयत आहेत. (कोधवग्गो)

११. जो गंभीर प्रज्ञेचा, मेधावी, मार्ग-अमार्गाचा जाणकार आहे व ज्याने उत्तम अर्थ (निब्बान) प्राप्त केले आहे, त्यास मी ब्राह्मण म्हणतो. (ब्राह्मणवग्गो)

१२. श्रद्धासंपन्न, सीलसंपन्न, यश आणि भोगयुक्त (माणूस) जिथे-जिथे जातो, त्या-त्या जागी तो पुजला जातो. (पकिण्णकवग्गो)

१३. शेतामधील दोष गवत आहे, प्रजेतील दोष राग आहे, याकरिता रागविहीन माणसांस दान दिल्याने महाफळ मिळते. (तण्हावग्गो)

१४. डोळ्यांचे संयम चांगले आहे, कानाचे संयम चांगले आहे, नाकाचे संयम चांगले आहे, जिभेचे संयम चांगले आहे. (भिक्खूवग्गो)

१५. जो जीवहिंसा करतो, खोटे बोलतो, चोरी करतो, परस्त्रीगमन करतो, दारु पितो, जो व्यक्ती त्यात लागून-पडून राहतो तो व्यक्ती अशाप्रकारे या जीवनामध्ये आपलेच मूळ खोदत असतो. (मलवग्गो)

१६. मन सर्व प्रवृत्यांचा अग्रणी आहे, मनच प्रधान आहे, जे काही उत्पन्न होते ते मनापासूनच उत्पन्न होते, जर कुणी वाईट विचार करीत

असेल किंवा वाईट कर्म करीत असेल तर दुक्ख त्याचा पाठलाग तसेच करते, ज्याप्रमाणे बैलबंडीचे चाके बैलांच्या पायांचा करतात. (यमकवग्गो)

१८. मन सर्व प्रवृत्त्यांचा अग्रणी आहे. मनच प्रधान आहे, जे काही उत्पन्न होते ते मनापासूनच उत्पन्न होते, जर कुणी चांगला विचार करीत असेल किंवा चांगले कर्म करीत असेल तर सुख त्याचे अनुसरण तसेच करते, ज्याप्रमाणे कधीही सोबत न सोडणारी सावली. (यमकवग्गो)

१९. या जगात वैराने वैरी कधीच संपत नाही, शांत होत नाही तर ते अवैरानेच शांत होते, अवैरानेच वैर संपते हाच सदाचा नियम आहे. (यमकवग्गो)

२०. त्यांनी मला रागाविले, त्यांनी मला मारले, त्यांनी मला जिंकले, त्यांनी मला लुटून घेतले असे जे मनात राखून ठेवतात, त्यांचे वैर शांत होत नाही. (यमकवग्गो)

२१. चंदन, तगर, कमळ, जुई या सर्वांच्या सुगंधापेक्षा सील-सदाचाराचा सुगंध चांगला आहे.

महामंगल सुत्त

असे मी ऐकले आहे, एकदा भगवान बुद्ध श्रावस्ती येथे अनाथपिण्डकाच्या जेतवन उद्यानात निवास करीत होते. तेव्हा कोणी एक देवता रात्रीच्या शेवटच्या प्रहरी रात्रीला आणि जेतवानाला आपल्या प्रकाशाने प्रकाशित करीत भगवंता जवळ आली आणि भगवंताला अभिवादन करून हात जोडून एकीकडे उभी राहीली व गाथेने भगवंताला म्हणाली -

१. हे भगवान! स्वतःचे कल्याण इच्छिणाऱ्या पुष्कळ देवतांनी व मनुष्यांनी मंगलाचा विचार केला. तेव्हा उत्तम मंगल कोणते ते आपण सांगावे.

२. (भगवान म्हणाले) : मुर्खाची संगती न करणे, सुज्ञांची सोबत करणे व पूज्य लोकांची पूजा करणे, हेच उत्तम मंगल होय.

३. अनुकूलस्थळी निवास करणे, पुण्य संपादन करणे, स्वतःला सन्मार्गाला लावणे, हेच उत्तम मंगल होय.

४. विद्यासंपादन करणे, कला संपादन करणे, सदवर्तनी असणे व सुभाषण करणे हेच उत्तम मंगल होय.

५. आई-वडीलांची सेवा करणे पत्नी आणि पुत्राचे संगोपन करणे, नसल्या उलाढाली न करणे हे उत्तम मंगल होय.

६. दान देणे, धर्मांचरण करणे, आप्तेष्टांना 'मदत' करणे वाईट प्रकारचे कृत्य न करणे हे उत्तम मंगल होय.

७. पापासून अलिप्त राहणे, मद्यपान न करणे आणि धार्मिक कृत्त्यात तत्पर असणे हेच उत्तम मंगल होय.

८. गौरवशील होणे, नम्र असणे, संतुष्ट राहणे, केलेले उपकार स्मरणे व वेळोवेळी धम्मश्रवण करणे हेच उत्तम मंगल होय.

९. क्षमाशील असणे, लीनता बाळगणे, धम्मश्रवणाची आवड निर्माण होणे आणि वारंवार धम्मचर्चा करणे हेच उत्तम मंगल होय.

१०. तप करणे (ध्यान भावना करणे) बह्मचर्येचे पालन करणे, आर्यसत्याचे ज्ञान संपादन करणे आणि निर्वाणाचा साक्षात्कार करणे हेच उत्तम मंगल होय.

११. ज्याचे मन लोकस्वभावाने (लाभ व हानी यश व अपयश, निंदा व स्तुती, सुख व दुःख हेच आठ लोकधर्म किंवा लोक स्वभाव आहेत) विचलित न होता शोकरहित, निर्मळ व पवित्र असतो, हेच (त्यांच्याकरिता) उत्तम मंगल होय.

१२. अशा मंगलाचे आचरण करून लोक कल्याणाचा साक्षात्कार करतात, हेच त्यांच्याकरिता उत्तम मंगल होय.

करणीय मेत्तसुत्त

१. स्वहितदक्ष मनुष्याने शांत पदाचे ज्ञान मिळवून ते पद (निर्वाण) प्राप्त करून समर्थ, आर्जवयुक्त, अगदी सरळ, मधुर-भाषी, नम्र आणि गर्वरहित व्हावे.

२. त्याने संतुष्ट, सुलभतेने जीवन चालविणारा, उठाठेवी न करणारा, कोणत्याही गोष्टीची हाव न धरणारा, शांतेद्रिय निपुन, शिलांचे उल्लंघन न करणारा, कुटुंबाविषयी फाजील ओढ न दाखविणारा व्हावे.

३. जेणे करून सुज्ञ लोक दोष देतील असे किंचितमात्र दुराचरण करू नये. सर्व प्राणीमात्र सुखी, निर्भय व आनंदित असोत, अशी भावना करावी.

४-५. जे जंगम किंवा स्थावर, लांब किंवा मोठे, मध्यम, ऱ्हस्व, अणुमात्र किंव स्थूल तसेच दिसणारे किंवा अदृश्य, दुरस्थ किंवा जवळ राहणारे, उत्पन्न झालेले किंवा उत्पन्न होणारे सर्वच प्राणी आनंदित होवो.

६. ते परस्परास न फसवीत, कोणीही कोणाचा अपमान न करीत, क्रोधाने किंवा द्वेषाने एक दुसऱ्याला दु:खविण्याची इच्छा न धरोत.

७. आई जशी प्रसंगी आपले प्राण खर्ची घालून आपल्या एकूलत्या एक पुत्राचे संरक्षण करते, त्याचप्रमाणे सर्व प्राणीमात्रा विषयी असीम करूणा बाळगावी.

८. आणि सर्व लोकांविषयी वर, खाली आणि चोहीकडे अमर्याद, निवैर आणि शत्रूभाव रहित अशी मैत्री भावना वाढवावी.

९. उभे असता, चालले असता, बसले असता, किंवा निजले असता जागरुक रहावे व ही (मैत्रींची) स्मृति कायम ठेवावी या अवस्थेस इहलोकीचा ब्रह्मविहार असे म्हणतात.

१०. मिथ्यादृष्टिचा अवलंब न करता शीलवान आणि ज्ञान संपन्न होऊन विषयभोगाचा त्याग केल्याने तो खात्रीने पुनरपि गर्भवास भोगत नाही.

धम्मपालनाचा उपदेश

१. सर्वच प्रकारचे पाप वर्ज्य करणे, पुण्यकार्याचा संचय करणे, स्वचित्ताने संशोधन करणे हेच बुद्धाचे शासन आहे.

२. धम्माचरण करावे, दुराचरण करू नये, धम्माप्रमाणे आचरण करणारा मनुष्य इहपरलोकी सुखाने निवास करतो.

३. पुष्कळ बोलल्यामुळे धर्मधर किंवा धार्मिक होत नाही. तर जो धर्माला थोडेसेच ऐकतो व त्याप्रमाणे आचरण करतो तोच खरा धार्मिक किंवा धर्मधर, धर्माला धारण करणारा होय.

४. जो धर्मांमध्ये कोणताही दोष पाहत नाही, धम्माप्रमाणे निर्दोष जीवन जगतो तोच धार्मिक होय.

तथागतने कहा था...

१. मा अनुस्सवेन : किसी बात को इसलिए मत मान लो कि वह सुनने में आई है। यह जरूरी नहीं कि सुनी गई हर बात सही ही हो।

२. मा परम्पराय : किसी बात को इसलिए भी मत मान लो कि वह परंपरा से चली आई है। बहुत से अन्धविश्वास एवं अवैज्ञानिक बातें परम्परा से चले आते है।

३. मा इतिकिरियाय : किसी बात को इसलिए भी मत मान लो कि लोग ऐसा ही कहते रहे है। बहुत सी बेसिर-पैर की बाते इसी प्रकार के लोगों की देन है।

४. मा पिटकसम्पदानेन : किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि वह धर्मशास्त्रों द्वारा बताई गई है। बहुत सी अप्रमाणिक एवं अवैज्ञानिक बातें इस धर्मग्रंथो की देन है।

५. मा तक्त हेतु : किसी बात को इसलिए भी मत मान लो कि वह तर्क पर आधारित है। अतिशय चालक एवं स्वार्थी मनुष्य तर्क से सत्य को असत्य में बदल सकता है।

६. मा नयहेतु : किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि कोई बात न्यायसंगत है। लोभी एवं मोह से मूढ व्यक्ति को असत्य में बदल सकता है।

७. मा आकारवितवक्केन : किसी बात को इसलिए भी मत माना लो कि कहने वाले का आकार-प्रकार ठीक-ठाक है। यह जरूरी नहीं कि देखने में धष्ट-पुष्ट व्यक्ति शील संपन्न ही हो।

८. मा दिट्ठिनिज्झानक्खन्तिया : किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि अमूक बात पसंद आ गई है। यह जरूरी नहीं कि पसंद की गई बात वैज्ञानिक ही हो, सत्य ही हो।

९. मा भब्बरूपताय : किसी बात को इसलिए भी मत मानो कि कहनेवाला भव्य एवं आकर्षक है। आकर्षक मनुष्य भी शील सम्पन्नता के अभाव से हीन हो सकता है।

१०. मा समणो नो गहारी : किसी बात को इसलिए भी मत मान लो कि कहनेवाला हमारा गुरु है, क्योंकि गुरुओं में भी काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि दोष हो सकते है।

- भगवान बुद्ध और उनका धम्म

अनुवादक : डॉ. भदन्त आनन्द कौसल्यायन

मित्र के रूप में शत्रु

इन चार प्रकार के पुरुषों को मित्रवत व्यवहार करनेपर भी शत्रु ही समझना चाहिऐ । जैसे की -

१) परधनहारक को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये ।

२) बाते बनाने वाले को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये।

३) खुशामद करने वाले को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये।

४) हानीकारक कृत्यो में स्वेच्छा सहायक को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये ।

१) परधनहारक मित्र : इन चार स्थानों पर परधनहारक को अपना शत्रु समझना चाहिये । जैसे की -

१) यह परधनहारक होता है ।

२) यह अल्पमात्र देकर अधिक की आशा रखता है ।

३) दुसरों के लिये भय उत्पादक काम करता रहता है । और

४) केवल धनप्राप्ति के लिये मैत्री करता है ।

२) केवल बाते बनाने वाले मित्र : इन चार कारणों से केवल बाते बनाने वाले को मित्र होते हुए भी शत्रु ही समझना चाहिये । जैसे की-

१) वह बीती हुई बातों की प्रशंसा करता रहता है, या

२) आगे होनेवाली बातों की ही प्रशंसा करता रहता है ।

३) निरर्थक बातों की प्रशंसा करता है और

४) वर्तमान के कार्यो में अनेकविध भय दिखाता रहता है ।

३) खुशामदी करनेवाले मित्र : इन चार बातों से किसी खुशामदी को अपना मित्र नहीं मानना चाहिये । जैसे की -

१) वह गलत कर्मों में अनुमति दे डालता है ।

२) अच्छे कार्यो में भी अनुमति देता है ।

३) सामने प्रशंसा करता है ।

४) पीठ पिछे निन्दा करता है ।

४) सम्पत्ति नाश में सहायक मित्र : चार कारणों से सम्पत्तिनाश में सहाय्यक को मित्र नहीं मानना चाहिये । जैसे की -

१) यह शराब पीने और प्रमादयुक्त कार्य करने में सहाय्यक होता है ।

२) असमय में चौरास्ता घुमने में साथ देता है ।

३) नृत्य-गीत उत्सवों में उसके सहाय्यक रूप में सम्मिलित रहता है । एवं

४) जुआ आदि गलत कामों के विधान में सहाय्यक होता है ।

तथागत बुद्ध ने यह कहकर फिर से यह भी कहा -

अञ्ञदत्थुहरो मित्तो, यो च मित्तो वचीपरो ।
अनुप्पियं च यो आह, अपायेसु च यो सखा ।।

अर्थात - परधनहारी, बातूनी, चाटूकार एवं पापकर्मों में सहाय्यक, ये चार मित्र होते हुए भी वस्तुतः अमित्र ही है, ऐसा बुद्धिमान पण्डित को समझ लेना चाहिये ।

- दीघनिकायपालि : सिगालोवादसुत्त

सम्यक वाणी

- जिस तरह उबलते पानी में हम अपना प्रतिबिम्ब नहीं देख पाते है....उसी तरह क्रोध में यह नहीं समझ पाते है कि... हमारी भलाई किस बात में है और किस बात में नहीं है । **- तथागत बुद्ध**
- जिस दिन हम समझ जायेंगे कि, सामनेवाला गलत नहीं है सिर्फ उसकी सोच हमसें अलग है; उसदिन जीवन से सब दुक्ख समाप्त हो जायेंगे । **- तथागत बुद्ध**
- मनुष्य स्वयं किये गये दुष्कर्मो से स्वयं को मलिन करता है और स्वयं किये गये सत्कर्मों से स्वयं को पवित्र करता है । स्वयं को पवित्र और अपवित्र रखना दोनो स्वयंपर ही निर्भर करता है । कोई दुसरा मनुष्य दुसरों को पवित्र-अपवित्र नहीं कर सकता । **- तथागत बुद्ध**
- किसी भी तरह के पापकर्म न करना, कुशल कर्मों का संचय करना और चित्त को परिशुद्ध करना, यही बुद्ध की शिकवन है । **- तथागत बुद्ध**
- विद्येविना मति गेली, मति विना नीति गेली, नीति विना गति गेली, गति विना वित्त गेले, वित्त विना शुद्र खचले, एवढे अनर्थ एका अविद्येने केले **- ज्योतिबा फुले**
- विद्या हे धन आहे रे श्रेष्ट साऱ्या धनाहुन, त्याचा साठा जयापासी त्यास ज्ञानी म्हणती जन **- सावित्रीबाई फुले**
- बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिला कोई ।
  जब दिल खोजा आपना मुझसे बुरा न कोई ।। **- संत कबीर**

- शब्द शब्द सब कोई कहै, शब्द के हात न पाव ।
  एक शब्द औषधि करे, एक शब्द करै घाव ।। **- संत कबीर**

- जाति न पुछो साधु की, पुछ लिजिए ग्यान ।
  मोल करो तलवार का, पडा रहन दो म्यान ।। **- संत कबीर**

- युवाओंने राजनीति के तरफ नहीं तो अध्ययन (शिक्षा) के तरफ ख्याल देना चाहिये, ग्यान की गरीबी अगर न रही तो तुम्हारी सत्ता न होते हुये भी सत्ताधारियों को नियंत्रीत करने की क्षमता इस शिक्षा में निश्चित रूप से है । **- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर**

- तुम्हारा जन्म गरीब घर में हुआ यह तुम्हारा दोष नहीं है, लेकिन गरीब होकर ही मरना यह सिर्फ और सिर्फ तुम्हारा ही दोष है । **- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर**

- जिसका मन स्वतंत्र नहीं, वह स्वतंत्र होने पर भी गुलाम है । **- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर**

- लोकनिष्ठा का अर्थ है सभी अन्यायों के विरोध में दृढता से खडी रहनेवाली कर्तव्यनिष्ठा । **- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर**

- स्वातंत्र्य, समता, बंधुता और न्याय इन मानवी मुल्योंपर आधारित समाज अपने देश में निर्माण होना यह आत्यांतिक आवश्यक है । **- डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर**

छह दिशा नमस्कार के अर्थ

तथागत बुद्ध सिगाल गृहपतिपुत्र को समझाते हुए कहते है - गृहपतिपुत्र! आर्यश्रावक छह दिशाओं की पुजा कैसे करता है ?

छह दिशाओं को इस तरह जानना चाहिये । -

१) पुरत्थिमा दिसा मातापितरो वेदितब्बा अर्थात माता-पिता को पूर्व दिशा समझना चाहिये ।

२) दक्खिणा दिसा आचरिया वेदितब्बा अर्थात आचार्य-गुरु को दक्षिण दिशा समझना चाहिये ।

३) पच्छिमा दिसा पुत्तदारा वेदितब्बा अर्थात स्त्री-पुत्रोंको पश्चिम दिशा समझना चाहिये ।

४) उत्तरा दिसा मित्तामच्चा वेदितब्बा अर्थात मित्र-अमात्य को उत्तर दिशा समझना चाहिये ।

५) हेट्ठिमा दिसा दासकम्मकरा वेदितब्बा अर्थात नोकर-कामदारों को नीचे की दिशा समझना चाहिये ।

६) उपरिमा दिसा समणब्राह्मणा वेदितब्बा अर्थात श्रमण-ब्राह्मण को उपर की दिशा समझना चाहिये ।

छह दिशाओं को स्मरण करने के लिये इस तरह दिखाया जा सकता है -

माता-पिता - पूर्व दिशा	आचार्य-गुरु - दक्षिण दिशा
पत्नी-पुत्र - पश्चिम दिशा	मित्र-अमात्य - उत्तर दिशा
नोकर-कामदारों - नीचे की दिशा	श्रमण-ब्राह्मण उपर की दिशा

१) **पूर्वदिशारूपी माता-पिता के प्रति कर्तव्य** : पाच कारणों से पूर्व दिशा मान कर माता-पिता की सेवा करनी चाहिये । जैसे की -

१) भत्तो ने भरिस्सामि अर्थात इन्होने मेरा पालन पोषण किया है, अत: मैं भी इनका पालन पोषण करूँगा ।

२) किच्चं नेसं करिस्सामि अर्थात इन्होने मेरा कार्य किया है, अत: मै भी इनका कार्य करूँगा ।

३) दायज्जपटिपज्जामि अर्थात इन्होने मुझको उत्तराधिकार सौपा है, अत: मैं भी उत्तराधिकार का प्रतिपादन करूँगा ।

४) कुलवंस उपेस्सामि अर्थात इन्होने मेरा कुलवंश चलाया है, अत: मैं भी इनका कुलवंश चलाऊँगा ।

५) अथ वा पन पेतानं कालङ्कतानं दक्खिणं अनुप्पदस्सामीति अर्थात मृतपूर्व पुरुषों को पुण्यानुमोदन के लिये श्रद्धा से दान करूँगा।

पुत्रों के प्रति माता-पिता के कर्तव्य : इस प्रकार पाँच तरह से सेवित हुए वह माता-पिता अपने पुत्रपर पाँच तरह से अनुकम्पा करते हैं। जैसे कि -

१) पापा निवारेन्ति अर्थात पाप-कर्म से दूर हटाते हैं ।

२) कल्याणे निवेसेन्ति अर्थात पुण्य कर्म में लगाते हैं ।

३) सिप्पं सिक्खापेन्ति अर्थात शिल्पविद्या सिखाते हैं ।

४) पतिरूपेन दारेन संयोजेन्ति अर्थात योग्य स्त्री से उसका विवाह करते है ।

५) समये दायज्जं निय्यादेन्ति अर्थात यथासमय उत्तराधिकार का निष्पादन करते है ।

२) **दक्षिण दिशारूपी आचार्य-गुरु के प्रति कर्तव्य** : पाँच प्रकार से आचार्य-गुरु रूप दक्षिण दिशा का प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये । जैसे की -

१) उट्ठानेन - तत्परतासे प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये ।

२) उट्ठानेन - सेवा से प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये ।

३) सुस्सुसाय - ध्यान से प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये ।

४) पारिचरियाय - परिचर्या से प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये ।

५) सक्कच्चं सिप्पपटिग्गहणेन - सत्कारपूर्वक शिल्प-विद्या ग्रहण से प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये ।

शिष्य प्रति आचार्य-गुरु के कर्तव्य : आचार्य-गुरु पाँच प्रकार से अपने शिष्यपर अनुकम्पा करते हैं । जैसे कि -

१) सुविनीतं विनेन्ति - विनययुक्त कर देते है ।

२) सुग्गहितं गाहापेन्ति - सुन्दर शिक्षा देते है ।

३) सब्बसिप्पस्सुतं समक्खायिनो भवन्ति-अपनी विद्या की सुरक्षा हेतू धरोहर के रूप में सभी विद्या सिखाते है ।

४) मित्तामच्चेसुपटियादेन्ति - मित्र-अमात्यों के सामने प्रशंसा कर विश्वास जगाते है ।

५) दिसासु पस्तिणं करोन्ति- विविध दिशाओं के समस्या से रक्षा करते है ।

३) पश्चिम दिशारूपी पत्नी के प्रति कर्तव्य : पाँच स्थानों से पश्चिम दिशा का भार्या के रूप में प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये । जैसे की -

१) सम्माननाय अर्थात सम्मान से ।

२) अनवमाननाय अर्थात अपमान न करने से ।

३) अनतिचरियाय अर्थात व्यभिचार न करने से ।

४) एस्सरियवोस्सग्गेन अर्थात ऐश्वर्य प्रदान से ।

५) अलंकारानुप्पदानेन अर्थात अलंकार प्रदान से ।

४) **पति के प्रति पत्नी के कर्तव्य** : इन पाँच प्रकारों से उसका प्रत्युप्रस्थान करनेपर वह कहते में पाँच प्रकार से अनुकम्पा करती है ।

जैसे की -

१) सुसंविहितकम्मन्ता च होति - घर के सभी कार्य भली भाँति संपन्न करती है ।

२) सङ्गहि तपरिजना च - परिजन या सहयोगी नोकर-चाकर को संग्रह करती है ।

३) अनतिचारिनी च - वह स्वयं व्यभिचारी नहीं होती ।

४) सम्भतञ्च अनुरक्खति - अर्जित धन की रक्षा करती है । एवं

५) दक्खाच होति आलसा सब्बकिच्चेसु-सभी कार्यो में आलस्यरहित एवं दक्ष होती है ।

उत्तर दिशा रूपी मित्र-अमात्यप्रति कर्तव्य : किसी भी कुलपुत्र को उत्तर दिशा का मित्र अमात्य के रूप में प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये। जैसे कि-

१) दानेन - दान से

२) पेय्यवज्जेन - प्रिय वचन से

३) अत्थचरियाय - अर्थचर्या या उनका कार्य करने से

४) समानत्तताय - समान भाव दिखाने से

५) अविसंवादनताय - विश्वास प्रदान करने से

कुलपुत्रप्रति मित्र - अमात्य के कर्तव्य : इन पाँच स्थानों से उनका प्रत्युप्रस्थान करने से वह मित्र एवं साथी बदले में पाँच प्रकार से उसपर अनुकम्पा करते है । जैसे कि -

१) पमत्तं रक्खन्ति - प्रमाद या बेहोश होनेपर रक्षा करते है ।

२) पमत्तस्स सापतेतय्यं रक्खन्ति - प्रमत्त की सम्पत्ति की रक्षा

करते है ।

३) भीतस्स सरणं होन्ति - भय या संकट आनेपर रक्षा करते है ।

४) आपदासु न विजहन्ति - आपतकाल में नहीं छोडते । एवं

५) अपरपजा चस्स पटिपूजेन्ति - अन्य साधारण जन भी ऐसे मित्र-अमात्य वाले का सत्कार करते है ।

नीचे की दिशा नोकर-कामदारों के प्रति कर्तव्य : पाँच स्थानो से मालिक को अपने नोकर का प्रत्युप्रस्थान करना चाहिये । जैसे कि -

१) यथाबलं कम्मन्तसंविधानेन - शक्ति के अनुसार, कार्य के अनुसार, कार्य के विभाजन से,

२) भत्तवेतनानुप्पदानेन - यथासमय भोजन व वेतन देने से,

३) गिलानुपट्ठानेन - रोगी होनेपर सेवा चिकित्सा से

४) अच्छरियानं रसानं संविभागेन - समय-समयपर उत्तम पदार्थों के दान से एवं

५) समये वोरसग्गेन - समयपर छुट्टी या अवकाश देने से

घर परिवारों में रहनेवाले हर किसी को गृहस्थ कर्तव्य की पालन करना चाहिये । पारिवारिक एवं सामाजिक सुख-शान्ति के लिये, सौहार्द एवं मैत्रीपूर्ण वातावरण के लिये सभी उपासक-उपासिकाओं को गृहस्थ कर्तव्य पालना करना चाहिये । गृहस्थ कर्तव्य पालन करने से परिवार में सुख होता है, शान्ति होता है, आनन्द होता है और जीवन भी सार्थक और सफल बन जाता है ।

- दीघनिकायपालि : सिगालोवादसुत्त

उर्दु शेर

१) उजाले अपनी यादों के हमारे साथ रहने दो,
न जाने किस गली में जिन्दगी की शाम हो जाये **(डॉ. बशीर 'बद्र')**

२) बात जब है कि दुश्मनों से भी,
जब करो, दोस्ती की बात करो. **(सिकन्दर अली 'बद्र')**

३) इस सियासत ने लोगों को समझा दिया,
तुमको आँखे नहीं, आईना चाहिऐ **(डॉ. बशीर 'बद्र')**

४) लोग इतने कुसूर करके भी,
किस कदर बेकुसूर रहते है । **(अब्दुल हमीद 'अदम')**

५) मेरी तुमसे कोई दुश्मनी तो नहीं,
सामने से हटो, रास्ता चाहिये । **(डॉ. बशीर 'बद्र')**

६) जिनको सुरज नहीं जगा पाया,
उनको आकर जगा गयी रोटी । **(कृष्ण 'मित्र')**

७) जो गलत को गलत नही कहते,
वो गलत को सही नहीं करते । **(हरजीत)**

८) मन मन्दिर, मन काबा-काशी, मन में तुम
प्यार नहीं है, तो फिर क्या है मन्दिर में । **(सोम 'अधीर')**

९) हमने 'जिगर' उसे ही सब कुछ माना था,
पता न था, शैतान से बदतर निकलेगा। **(जिगर ह्योपुरी)**

१०) जब साथ न दे कोई, आवाज हमें देना,
हम फुल सही, लेकिन पत्थर भी उठायेंगे। **(डॉ. बशीर 'बद्र')**

११) जिन्दा पिता को 'डैड' कहें, वो भी शान से,
ये मगरिबी तहजीब के मारे हुए बच्चे। **(जिगर इयोपुरी)**

१२) कैसे मरा, वो क्यों मरा, सबको है जुस्तजू,
ये भी तो कोई पुछे कि वो किस तरह जिया । **(सब फाजिती)**

१३) चेहरा उजडा है, तो आईने को इल्जाम न दो,
हम ही बिगडे है, जो है शहर में चर्चा अपना । **(सलाहुद्दीन 'नदीम')**

१४) फिक्र कुछ इसकी कीजिये यारो,
आदमी किस तरह जिये यारो । **(विद्यासार वर्मा)**

१५) जिनका दावा था कि मिट जायेंगे, हारेंगे नहीं,
पाँव कालीनों पे रखते ही वो गाफिल हो गये । **(मृदुला अरुण)**

१६) जिस राह से जाना है नयी पीढी को 'राही',
उस राह में इक अन्धा कुआँ देख रहा हूँ । **(बालस्वरूप 'राही')**

१७) पहले हर शख्स गिरेबान में अपने झाँके
फिर बसद-शौक किसी और पे तनकीद करे । **(मुर्तजा बरलास)**

१८) हम भी अब लोगों के गम से बेखबर रहने लगे,
हम भी अब महलों में रह सकने के काबिल हो गये । **(मुदृला 'अरुण')**

१९) शोहरत की बुलन्दी भी पल-भर का तमाशा है,
जिस शाख पे बैठे हो, वो टूट भी सकती है । **(डॉ. बशीर 'बद्र')**

२०) सागर की बहती लहरों पर बाँध नहीं बन पाता है,
वो पागल है जो सूरज के आगे दिया जलाता है । **(जिगर इयोपुरी)**

२१) चाँद पर बाद में जाना ओ जमाने वालो,
पहले धरती पे तो चलने का सलीखा सीखो । **(अख्तर कानपुरी)**

२२) घरो पे नाम थे, नामों के साथ ओहदे थे,
बहुत तलाश किया, कोई आदमी न मिला। **(डॉ. बशीर 'बद्र')**

२३) तुम्हारे दिल की चुभन भी जरूर कम होगी,
किसी के पाँव से काँटा निकालकर देखो । **(डॉ. कुंअर बेचैन)**

२४) बुढी हुई उम्मीद, तो क्या फिर भी लडूँगा,
मैं अपने इरादे को जवां देख रहा हूँ। **(बालस्वरूप 'राही')**

२५) जो गरीबों से भी हमदर्दी का करता है सुलूक,
मुझको उस भगवान के घर का पता दरकार है । **(अब्दुल हमीद 'अदम')**

- देहलवी, एम. असलम, उर्दू के चुने हुए २१०० शेर,
प्रकाशक : 'प्रीमियर बुक्स, यमुना विहार, दिल्ली, २०१२'

PEARLS OF WISDOM

Life is an Echo. What you send out – comes back,
What you sow – you reap.
What you give – you get,
What you see in others – exists in you.
Do not judge – so you will NOT be judged.
Radiate and give Love – Love will come back to you.

You don't need religion to have morals,
If you can't determine right from wrong,
Then you lack empathy no religion.
When a bird is alive... It eats Ants.
When the bird is dead... Ants eat the bird.
Time and circumstances can change at any time.
Don't devalue or hurt anyone in life.
You may be powerful today, but remember,
Time is more powerful than you !
One tree makes a million matchsticks... Only one
Matchstick needed to burn a million trees...
So be good and do good.

A soul that carries empathy is a soul that has survived enormous pain.

Honesty is a very expensive gift. Do not expect it from cheap people. **– Warren Buffet**

Always have a unique character – like salt,

It's presence is not felt;

But it's ABSENCE

Makes everything TASTELESS.

A moment of Patience in a moment of Anger saves you a hundred moments of Regret.

Do not dwell in the past,

Do not dream of the future,

Concentrate the mind on the present moment. **– Buddha**

"Just as a candle cannot burn without fire, men cannot live without a spiritual life." **– Buddha**

Great values are built on strong moral foundations.

Men become great when they allow these values

To take root within their souls and live by them. **– Lincoln Patz.**

"Top 15 Things Money Can't Buy

Time. Happiness, Inner Peace, Integrity, Love, Character, Manners, Health, Respect, Morals, Trust, Patience, Class, Common sense. Dignity." **– Roy T. Bennett, The Light in the Heart**

"Don't let your special character and values, the secret that you know and no one else does, the truth - don't let that get swallowed up by the great chewing complacency." **– Aesop**

"Before you call yourself a Christian, Buddhist, Muslim, Hindu or any other theology, learn to be human first." – **Shannon L. Alder**

"How wonderful it would be if people did all they could for one other without seeking anything in return ! One should never remember a kindness done, and never forget a kindness received." **– Kentetsu Takamori**

"The parent is protector and trainer, but never the ultimate teacher. Every parent is responsible for teaching their kid basic moral conduct, manners, the difference between love and hate, and right from wrong. However, after maturity, the child must set off to seek knowledge on their own. Religion is never to be forced. And you cannot threaten your child with hell and tell them your religion is the one right way. There is no one right way. The many ways to the Creator are as varied as the colors of a rainbow." **– Suzy Kassem, Rise Up and Salute the Sun : The Writings of Suzy Kassem**

"The innocence of children is what makes them stand out as a shining example to the rest of Mankind." **– Kurt Chambers**

The mind of the superior man is conversant with righteousness; the mind of the mean man is conversant with gain. **– Albert Einstein**

Knowledge is of no value unless you put it in practice. **– Heber J. Grant**

You know the value of every merchandise but you do not know your own value – that is stupidity.... **– The Sufi Path of Love, The Spiritual Teachings of Rumi**

Grief can take care of itself, but to get the full value of joy you must have somebody to share it with. **– Mark Twain**

"Keep your thoughts positive because your thoughts become your words. Keep your words positive because your words become your behavior. Keep your behavior positive because your behaviour becomes your habits. Keep your habits positive because your habits become your values. Keep your values positive because your values become your destiny." **– Mahatma Gandhi**

"Possessions, outward success, publicity, luxury - to me these have always been contemptible. I believe that a simple and unassuming manner of life is best for everyone, best for both the body and the mind." **– Albert Einstein**

Accept both compliments and criticism. It takes both sun and rain for a flower to grow. Wisdom, compassion and courage are the three universally recognized moral qualities of men. **– Confucius**

Morality is doing what is right regardless of what you are told

Religion is doing what you are told regardless of what is right.

You can't go back and change the beginning,

But you can start where you are and

Change and ending.